ISSN 0972-3951

आज़ादी का अमृत महोत्सव

राजभाषा पत्रिका

नास्ति ज्ञानत्परो बन्धुः

विज्ञानवाणी

अंक 27, वर्ष 2021

वै.औ.अ.प.-राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद)

संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह, हिन्दी दिवस, कवि सम्मेलन एवं हिन्दी कार्यशाला की झलकियाँ

अखिल भारतीय वानस्पतिक सम्मेलन समारोह का उद्घाटन करते हुए संस्थान के निदेशक, मुख्य अतिथि एवं अन्य

भारतीय वानस्पतिक सम्मेलन समारोह में स्मारिका का विमोचन करते हुए अतिथिगण

अखिल भारतीय वानस्पतिक सम्मेलन समारोह में संस्थान से प्रकाशित होने वाली विज्ञानवाणी वर्ष 2020 का विमोचन करते हुए अतिथिगण

संस्थान में आयोजित कौशल विकास कार्यक्रम में प्रतिभागियों का ग्रुप फोटोग्राफ

संस्थान में आयोजित कौल विज्ञान फाउंडेशन के कार्यक्रम का उद्घाटन

कौल विज्ञान फाउंडेशन के कार्यक्रम का दीप प्रज्ज्वलन द्वारा उद्घाटन

संस्थान में आयोजित हिन्दी कार्यशाला में मुख्य अतिथि प्रोफेसर डॉ. ज्ञान चन्द्र संजय गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान का व्याख्यान

संस्थान में आयोजित हिन्दी कार्यशाला में मुख्य अतिथि प्रो. ज्ञान चन्द्र का सदस्य सचिव, रा. का. स. द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव

आवरण मुख पृष्ठ चित्र : *निलम्बो न्यूसीफेरा* गार्टन का संस्थान में जर्मप्लाज्म संग्रह

राजभाषा पत्रिका

नास्ति ज्ञानत्परो बन्धुः

ISSN 0972-3951

विज्ञानवाणी

अंक 27

वर्ष 2021

WHERE PLANT-BASED RESEARCH TOUCHES LIFE THROUGH INNOVATION

NBRI

Estd. 1953

वै.औ.अ.प.-राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद)

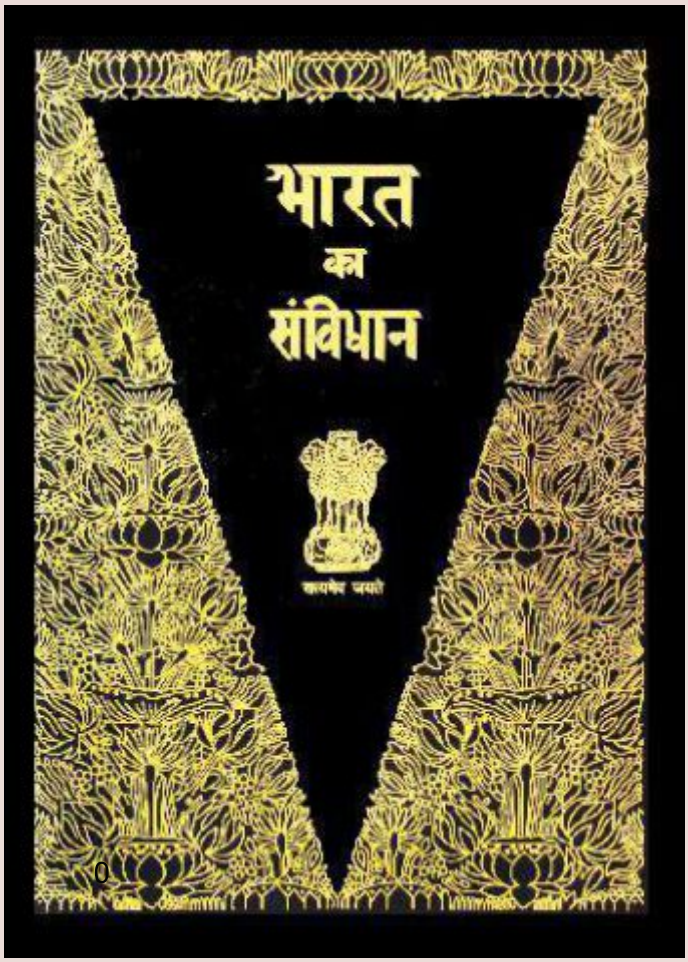

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और **राष्ट्र की एकता और अखंडता** **सुनिश्चित** करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

भारतीय संविधान अनुच्छेद

51–ए (मूल कर्तव्य) : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह–

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे, उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखे।

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोंण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

संविधान में हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

351. संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए जहाँ आवश्यक या वाँछनीय हो वहाँ उसके शब्द–भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

वै.औ.अ.प. – राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान
CSIR - National Botanical Research Institute
राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ – 226001, उ.प्र., भारत
Rana Pratap Marg, Lucknow - 226001, U.P., India

प्रोफेसर एस. के. बारिक
निदेशक
Professor S.K. Barik
Director

निदेशक की कलम से.....

हमारा देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। आजादी का अमृत महोत्सव तब सम्भव हो पाया जब हमारे स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों, कान्तिकारियों तथा अनेक वैज्ञानिकों ने अथक प्रयास, परिश्रम के साथ अपने प्राणों की आहूति देकर आजादी को प्राप्त किया। अधिकतर कांतिकारियों व स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों द्वारा सामयिक हिन्दी बोली का प्रयोग किया जाता था। उनमें **'वन्दे मातरम्, सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा, इंकलाब जिंदाबाद, रंग दे बसंती चोला, भारत माता की जय'** इत्यादि जोश उत्पन्न करने वाले नारे विकसित किए गए थे। हिन्दी भाषा ने व्यापक रूप से भारत के विभिन्न प्रान्तों में रहने वाले लोगों को जोड़ने का कार्य किया है।

हमारा संस्थान प्रति वर्ष अनवरत रूप से भारत सरकार के राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के दिशा निर्देशानुसार राजभाषा गृह पत्रिका का प्रकाशन करता है जिसमे सभी वैज्ञानिक, प्रशासनिक, तकनीकी अधिकारियों, कर्मचारियों व शोधार्थियों द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर एवं साहित्यिक लेख लिखे जाते हैं। इस पत्रिका के माध्यम से संस्थान के वैज्ञानिक, शोध व विकास के कार्यक्रमों को प्रयोगशाला से जन–सामान्य तक पहुंचाने में सहायता मिलती है। प्रस्तुत राजभाषा गृह पत्रिका विज्ञानवाणी वर्ष 2021 अंक 27 का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। आशा है पत्रिका में प्रकाशित सामग्री, लेख पाठकों के लिए अत्यन्त रूचिकर, ज्ञानवर्धक व लाभकारी होंगे। अंत में पत्रिका से जुड़े सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों, शोधार्थियों, कर्मचारियों व राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई देता हूँ व सराहना करता हूँ।

आप सभी को ढेर सारी शुभकामनाओं के साथ .....

सरोज बारिक
(सरोज कान्त बारिक) 28/3/22

Phones : (Off.) (0522) 2205848, EPABX Phone : (0522) 2297800 to 2297999 Fax : (0522) 2205839, Post Box No. 436, Lucknow-226001
e-mail : director@nbri.res.in, Website : http://www.nbri.res.in

सम्पादक मण्डल

RESEARCH TOUCHES LIFE THROUGH INNOVATION
WHERE PLANT-BASED
NBRI
Estd. 1953

सम्पादक
आनन्द प्रकाश

सम्पादक मण्डल
डॉ. श्री कृष्ण तिवारी
डॉ. संजीव कुमार ओझा
डॉ. किरण टोप्पो
डॉ. के. के. रावत
श्री बिजेन्द्र सिंह

कवर व चित्र संयोजन
श्री अविनाश चंद्र लिटिल

प्रकाशक
राजभाषा कार्यान्वयन समिति
सी.एस.आई.आर.– राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
© सर्वाधिकार सुरक्षित

सम्पादक की कलम से....

भारत में एक नए नारे **''हिन्दी भाषा है, देश की धड़कन, मिले अपना गौरव एवं अपनापन''** के साथ हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार त्वरित गति से हो रहा है। देश की मुख्य धारा, संचार माध्यमों, टेलीविजन, मोबाइल फोन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, ट्वीटर, फेसबुक, व्हाट्सऐप एवं अनेक वेबसाइट पर हिन्दी का प्रचार–प्रसार आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा है। भारतीय बाजार के साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हिन्दी भाषा प्रखर हुई है। कोविड जैसी अंतर्राष्ट्रीय महामारी से मुकाबला करने में व्यापक जनसम्पर्क, विज्ञापन, जनचेतना, के कार्य में हिन्दी के प्रयोग से अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई है। भारतीय हिन्दी फिल्म जगत जिसे बॉलीवुड कहा जाता है, 100 से अधिक प्रशिक्षण संस्थान विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय अभिनेता व अभिनेत्रियों को हिन्दी संवाद–सम्प्रेषण का प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं। विभिन्न संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में विज्ञान, अभियान्त्रिकी, विधि, खगोल विज्ञान, जनसम्पर्क व प्रबन्ध विज्ञान की शिक्षा में हिन्दी का प्रयोग सशक्त माध्यम बनता जा रहा है। भारत में सरकारी विभागों व संस्थानों में भारत सरकार का स्पष्ट निर्देश है कि वह अपने कार्यालय के क्रियाकलापों के अनुरूप हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ायें तथा राजभाषा हिन्दी गृह–पत्रिका का प्रकाशन करें।

हमारा संस्थान प्रतिवर्ष राजभाषा गृह–पत्रिका का प्रकाशन करता है जिसमें संस्थान के विभिन्न वैज्ञानिकों, प्रशासनिक और तकनीकी अधिकारियों, कर्मचारियों व शोधार्थियों द्वारा वैज्ञानिक, अकादमिक, शोध व विकास कार्यों पर आधारित तथा जनसामान्य के लेख प्रकाशित किये जाते हैं। प्रस्तुत पत्रिका वर्ष 2021 अंक 27 प्रकाशित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। आशा है कि पत्रिका का यह अंक आप सभी पाठकों को अत्यन्त ज्ञानवर्धक, सूचनाप्रद, आकर्षक व लाभकारी होगी। यद्यपि पत्रिका का प्रकाशन अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया गया है परन्तु किंचित असावधानी के कारण हुई त्रुटि को हमारे संज्ञान में लाने पर उसे दूर करने में हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी। अन्त में पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी लेखकों, वैज्ञानिकों, अधिकारियों व राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन समिति के सदस्यों का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने अपना सहयोग प्रदान किया।

आप सभी को ढेर सारी शुभकामनाओं के साथ.....

(आनन्द प्रकाश)
वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक व सदस्य सचिव,
राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन समिति

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

प्रो. सरोज कांत बारिक, निदेशक	अध्यक्ष
डॉ. श्रीकृष्ण तिवारी, मुख्य वैज्ञानिक	उपाध्यक्ष
आनन्द प्रकाश, वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य सचिव
डॉ. संजीव कुमार ओझा, वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
नियंत्रक प्रशासन	सदस्य
वित्त एवं लेखाधिकारी	सदस्य
भण्डार एवं क्रय अधिकारी	सदस्य
डॉ. सचित्र कुमार रथ, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. दिव्येन्दु अधिकारी, प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. खुराईजम जिबन कुमार सिंह, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. के. एम. प्रभुकुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. विजयराज आनंद, वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. (श्रीमती) किरण टोप्पो, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी	सदस्य
डॉ. के. के. रावत, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी	सदस्य
डॉ. कृष्णानन्द मौर्या, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी	सदस्य
श्रीमती सोना लमसल, अनुभाग अधिकारी	सदस्य
श्रीमती स्वाति शर्मा, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी	सदस्य
श्री रजत राज रस्तोगी, तकनीकी सहायक	सदस्य
श्री बिजेन्द्र सिंह, हिंदी अधिकारी	सदस्य

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता तथा विचारों की तार्किकता एवं सत्यता हेतु लेखकगण उत्तरदायी हैं।

अनुक्रमणिका

अंक 27 वर्ष 2021

1	कमल : एक बहुगुणीय पौधा	रीता वर्मा, अंशू साहू एवं इंद्रनील सान्याल	1
2	*कैनावेलिया* : एक संभावित पौष्टिक फसल	कीर्ति पांडेय एवं चंद्र शेखर मोहंती	5
3	टेरिडोफाइट्स के औषधीय तथा भोज्य पदार्थों के लोक–वनस्पति महत्व पर एक परिचर्चा	निवेदिता मल्ल एवं अजीत प्रताप सिंह	7
4	भारत में पुष्पकृषि : एक अवलोकन	अतुल बत्रा एवं एस. के. तिवारी	13
5	पीली सतावर	भगवानदास	16
6	भारत के संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स एवं उनका संरक्षण	बालेश्वर एवं अजीत प्रताप सिंह	18
7	हमारा पारम्परिक उपेक्षित अनाज समूह : मिल्लेट्स	शुभम जायसवाल, दिलेश्वर प्रसाद, वीरेंद्र के. मधुकर एवं प्रियंका अग्निहोत्री	23
8	जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष धान के पौधे का अनुकूलन	गीतगोविन्द सीनम, विष्णु कुमार, सर्वेश कुमार एवं संजय द्विवेदी	29
9	मॉस गार्डेन हाउस का सृजन एवं महत्व	दर्शन शुक्ला, अंकिता वर्मा एवं आशीष कुमार अस्थाना	34
10	भारत के मुनस्यारी में विश्व का पहला 'लाइकेन उद्यान'	संजीव नायक एवं संजीव चतुर्वेदी	39
11	*इम्पेसिएंस बालसामिना* : बहुउद्देशीय पौधे पर संक्षिप्त परिचय	दीक्षा कुमारी एवं बिक्रमा सिंह	41
12	बाँस : हरा सोना	भरत लाल मीना, विवेक श्रीवास्तव एवं मनीष एस भोयर	43
13	पेड़ पौधों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण का निदान	राजीव कुमार, शंकर वर्मा एवं एस. के. तिवारी	45
14	गुड़मार की उन्नत खेती	मोहन सिंह, जे. एन. तिवारी, अवनीश कुमार, राकेश चन्द्र नैनवाल एवं देवेन्द्र सिंह	47
15	पादपों द्वारा सर्पदंश का उपचार	मुहम्मद आरिफ, राखी सिंह एवं मंजूषा श्रीवास्तव	49
16	लसोड़ा एक बहुपयोगी उपेक्षित प्रजाति	सोनम मौर्या, पंकज भारती एवं बालेश्वर	52
17	*डहेलिया* एक आकर्षक सजावटी पौधा	दया शंकर, शंकर वर्मा एवं एस. के.तिवारी	55
18	झाड़ी एवं झाड़ी पट्टी	गिरिधारी शर्मा, राजीव कुमार, शंकर वर्मा एवं एस. के. तिवारी	59
19	पर्यावरण सूचना प्रणाली का सामाजिक योगदान	सुनील त्रिपाठी, दिवाकर सैनी, अंजू पटेल, एवं पंकज कुमार श्रीवास्तव	61
20	क्रिस्पर–कैस तकनीक से कोरोना वायरस का परीक्षण	विकास एवं सोमेन घोष	65
21	विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकास : जिज्ञासा	विवेक श्रीवास्तव, भरत लाल मीना एवं स्वाति शर्मा	67
22	संख्यावाची शब्दों का मानक रूप	के. के. सक्सेना	70
23	प्रकृति से जुड़े रहने वाले बच्चे अधिक खुश व प्रसन्न रहते हैं	आलोक कुमार श्रीवास्तव	71
24	कोरोना से डरो न	आलोक मिश्रा	74
25	खेत और खाने की थाली	शशांक कुमार मिश्रा एवं पुनीत सिंह चौहान	75
26	तीन महत्वपूर्ण कविताएं	सुरेश उजाला	76
27	आखिर क्या है उसकी कहानी	स्नेहा पाण्डेय	77

कमल : एक बहुगुणीय पौधा

रीता वर्मा, अंशू साहू एवं इंद्रनील सान्याल
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

संस्थान का वनस्पति उद्यान मुख्यतः अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों, जर्मप्लाज्म संग्रह, दुर्लभ, लुप्तप्राय, संकटग्रस्त और सजावटी प्रजातियों के संरक्षण पर केंद्रित है। फूलों की फसलों की नई किस्मों, किस्मों का विकास तथा किस्मों में सुधार संस्थान का मुख्य उद्देश्य है। पादप संरक्षण और प्रौद्योगिक समूह का मुख्य रूप से गैर–पारम्परिक आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय और सुगंधित पौधों के लिए कृषि प्रौद्योगिकियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। कमल की जड़ों को तालाब या नदी के तल की मिट्टी में लगाया जाता है, जबकि पत्ते पानी की सतह पर तैरते हैं या ऊपर होते हैं। फूल आमतौर पर पत्तियों से कई से.मी. ऊपर उठे हुए मोटे तनों पर पाए जाते हैं। पत्ती के डंठल 200 से.मी. (6 फीट 7 इंच) तक लंबे हो सकते हैं। आकर्षक फूल 30 से.मी. (12 इंच) व्यास तक के हो सकते हैं। फूलों वाले पूरे पौधे को 'पद्मिनी', प्रकंद को 'कमलकांड', कोमल पत्तियों को 'साम्बर्टिका', पेडुंकल को 'मृणाल', पुंकेशर को 'किरिजलवम', एवं टोरस को 'पप्नकोसा' कहा जाता है। 'कर्णिका या 'पद्माक्ष्य' के रूप में बीज और पद्मा को खिलाने वाले मधुमक्खी द्वारा फूलों में बने शहद को 'मकरदा' या 'पद्म–मधु' के रूप में जाना जाता है।

संस्थान में पाई जाने वाली किस्में :

1. सफेद फूल, जिसे आमतौर पर 'पुंडरिका' या श्वेत कमला कहा जाता है।
2. गुलाबी या लाल गुलाबी, जिसे रक्त कमला कहा जाता है।

फल एवं बीज :

इस पौधे का फल अघुलनशील नटलेट्स का एक समुच्च्य है। पके नटलेट अंडाकार, गोल या तिरछे होते हैं। 1.0 मी. तक लम्बे और 1.5 से.मी. चौड़े सख्त, चिकने, भूरे या भूरे रंग के काले पेरिकार्प के साथ जो थोड़े लम्बे समय तक धारीदार पेडुंकुलैटेड और सिंगल सीड होते हैं। पके कार्पेल में बीज भरे होते हैं। भारतीय बाजारों में कमल गट्टा के नाम से बीज को सब्जी के रूप में बेचा जाता है। फल उल्लेखनीय सुप्तता दिखाते हैं। वास्तव में इसके बीजों की लंबी उम्र फूलों के पौधे की किसी भी ज्ञात प्रजाति से अधिक होती है। ब्रिटिश संग्रहालय में वनस्पति विज्ञान के पहले रक्षक राबर्ट ब्राउन ने 1843 और 1845 के बीच कई बार निलम्बो के फलों के साथ प्रयोग किया और दिखाया है कि उन्होंने एक ग्लास टॉप बॉक्स में 150 साल की कैद के बाद अंकुरण की शक्ति बरकरार रखा है।

प्रकंद : यह 60–140 से.मी. लंबे 0.5–2.5 से.मी. व्यास में पीले–सफेद से पीले–भूरे रंग में चिकना भूरे रंग के पैच के साथ लंबें समय तक धारीदार नोड्स और इंटरनोड मौजूद होते हैं। पूरे ऊतक में प्रचुर मात्रा में स्टार्च पाया जाता है।

ताजा प्रकंदों का विश्लेषण	
जल	83.80%
वसा	0.11%
अपचायी शर्करा	1.56%
सुक्रोज	0.41%
प्रोटीन	2.70%
स्टार्च	9.25%
रेशे	0.80%
कैल्शियम	0.06%

विटामिन (मिलीग्राम/100ग्राम)	
थायमिन	0.22
रायबोफ्लैबिन	0.06
नियासिन	2.1
एस्कार्बिक अम्ल	1.5

कमल का फूल :

कमल का वानस्पतिक नाम *नीलम्बो न्युसीफेरा* है। कमल का फूल अपने अनगिनत महत्व और लोकप्रियता के कारण भारत का राष्ट्रीय फूल कहलाता है। कमल के फूल को 'इंडियन लोटस' या 'सेक्रेड लोटस' के रूप में भी जाना जाता है। अपने भव्य रूप, रंग, विविध आकार और सौंदर्य मूल्य के कारण व्यापक रूप से इसकी खेती की जाती है। सजावटी पौधों के लिए फूलों का रंग और आकार दो प्रमुख कारक होते हैं, जो उनके सजावटी मूल्य को निर्धारित करते हैं। कमल की पंखुड़ियों में तीन प्रमुख रंग होते हैं। सफेद, लाल और पीला। पूर्व के दो केवल एशियाई कमल में और बाद के केवल अमेरिकी कमल में मौजूद हैं। प्रजनन और कृत्रिम चयन के माध्यम से इसके सजावटी मूल्य को बढ़ाने के उद्देश्य से मिश्रित रंगों वाली कई किस्में प्राप्त की गई हैं। विभिन्न जर्मप्लाज्म की वर्णक संरचना पर एक बड़े पैमाने पर विश्लेषण से पता चला है कि पीला और लाल रंग मुख्य रूप से क्रमशः कैरोटीनाइड और एंथोसायनिन की सामग्री द्वारा निर्धारित किया जाता है। एमवाईबी जीन परिवार के जीनोम–वाइड विश्लेषण ने संकेत दिया कि कमल और अरेविडोप्सिस में एक समान एंथोसायनिन जैवसंरक्षण नियामक प्रणाली हैं। इस समानता के बावजूद सफेद और लाल किस्मों के बीच एक तुलनात्मक प्रोटिओमिक्स के अध्ययन से पता चला है कि सफेद फूल वाले कमल में एंथोसायनिन बायोसिंथेसिस की अनुपस्थिति का प्रमुख कारण एएनएस जीन की अनुपस्थिति हो सकती है। इसके अलावा आनुवंशिक स्थिर धब्बेदार रंग के नियमन के अंतर्निहित तंत्र का पता लगाने के लिए पौधों के फूलों के रंग पर हमारे ज्ञान को समृद्ध करना भी होगा।

रंग के अलावा सजावटी पौधों के आर्थिक मूल्य के लिए फूलों का आकार भी महत्वपूर्ण है। प्रजनन के विभिन्न उद्देश्यों के आधार पर विविध फूलों के आकार वाले कमल की किस्में प्राप्त

की गई हैं, जिनमें कुछ पंखुड़ी अर्ध–डबल पंखुड़ी, डबल पंखुड़ी, डुप्लीकेट पंखुड़ी और सभी डबल पंखुड़ी वाले कमल की खेती शामिल हैं। कमल गर्मी के दिनों में खिलता है, जो अलंकरण में इसके व्यापक उपयोग के लिए कुछ चुनौतियाँ लाता है। सजावटी उद्देश्यों के लिए इसे पहले या बाद में खिलाना बहुत महत्वपूर्ण होगा। इसलिए फूल आने के समय को नियंत्रित करने वाले तंत्र का अनावरण करना भी महत्वपूर्ण है। फूलों के समय को नियंत्रित करने वाले उम्मीदवार जीन की खोज के उद्देश्यों से एक ट्रांसक्रिप्टॉमिक विश्लेषण आयोजित किया गया है जो एक जटिल नियामक नेटवर्क के अस्तित्व का संकेत है।

संस्थान के उद्यान में कमल के फूल :

संस्थान में चार प्रकार के कमल के फूल हैं, जिनके रंग क्रमशः सफेद, गुलाबी, गहरा गुलाबी और अर्ध डबल पंखुड़ी हल्का गुलाबी रंग हैं। कमल के बहुपयोगी फायदे को देखते हुए संस्थान में भी कमल पर शोध चल रहा है।

प्रकंद और बीज :

कमल न केवल एक सजावटी पौधा है, बल्कि इसके खाद्य प्रकंद और बीजों के कारण एक सब्जी भी है। कमल में एक रूपात्मक रूप से संशोधित भूमिगत तना होता है, विशेष रूप से समशीतोष्ण पारिस्थितिकी के लिए इसका भूमिगत तना शरद ऋतु में बड़ा हो जाता है, जिसे प्रकंद के रूप में जाना जाता है। प्रकंद में प्रचुर मात्रा में स्टार्च, प्रोटीन और विटामिन होते हैं, जो इसे लोकप्रिय खाद्य सब्जी बनाते हैं। कमल के प्रकंद का विस्तार काफी हद तक इसके आर्थिक मूल्य को निर्धारित कर सकता है। इसके अलावा बढ़े हुए प्रकंद कमल को अपनी सुप्तावस्था के दौरान सर्दियों से जीवित रहने में मदद कर सकते हैं और इसके अलैंगिक प्रसार के लिए आधार और ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह घटना आलू के ट्यूबराइनेशन के समान है, जिसे एक बहुत ही जटिल आनुवंशिक नेटवर्क के माध्यम से नियंत्रित किया गया है। समशीतोष्ण और ऊष्णकटिबंधी कमल के बीच अंतर करने वाली एक महत्वपूर्ण विशेषता होने के नाते

चित्र संख्या–1 : 1. कमल कली 2. गुलाबी कमल 3. श्वेत कमल 4. संस्थान के तालाब में कमल 5. अपरिपक्व बीजफली 6. परिपक्व बीज व बीजफली 7. सूखा बीज 8. अंकुरित बीज 9–10. प्रकंद

यह कमल के विकास और वर्चस्व को समझने में भी मदद कर सकता है। ऐसा लगता है कि राइजोम इज़ाफा कमल के फूलने से जुड़ा हुआ है। आमतौर पर इज़ाफा फूल आने के बाद होता है। कृषि उत्पादन में इसकी उपज बढ़ाने के उद्देश्य से इस प्रकंद के विस्तार पर ध्यान केंद्रित करते हुए आनुवंशिक और ट्रांसक्रिप्टॉमिक अध्ययन किए गए हैं।

प्रकंद विकास के दौरान जीन अभिव्यक्तियों का विश्लेषण पीएनए–एससीक्यू के माध्यम से किया गया जिनसे प्रकंद वृद्धि के लिए विशिष्ट उम्मीदवार जीन की पहचान की गई।

कमल का पत्ता औषधीय रूप में उपयोग किया जाता है। कमल के पत्तों का उपयोग वजन घटाने वाली चाय के रूप में अधिक से अधिक किया जा रहा है। मानव शरीर में लिपिड के स्तर को नियंत्रित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि कमल के पत्तों में अल्कलाइड प्रमुख जैव सक्रिय यौगिक हैं, जिनमें न्यूसीफेरिन और एन–नोर्नुसिकेरिन प्रमुख दो हैं। अल्कलॉइड प्रमुख जैव सक्रिय यौगिक हैं और अल्कलाइड के जैवसंश्लेषण मार्ग और कमल के पत्ते में इसके नियमन का मूल्यांकन करने के लिए कई ट्रांसक्रिप्टॉमिक अध्ययन किए गए हैं। कमल के पत्ते, बीज, तना, कली, फूल, पराग और जड़ें औषधि के रूप में कैंसर, हार्ट समस्या, तनाव, अनिद्रा, डिप्रेशन, हाइपरटेंशन के जैसी बीमारियों में किया जाता है।

कमल पुनर्जनन और परिवर्तन प्रणाली की स्थापना पर अध्ययन :

एक माडल बागवानी पौधा होने के लिए एक परिवर्तन प्रणाली स्थापित करना आवश्यक हो सकता है, जो कमल में विभिन्न जीनों के कार्यों पर अध्ययन की सुविधा प्रदान करेगा। कमल के विभिन्न अन्वेषकों से कैलस के निर्माण को प्रेरित करने के लिए अध्ययन किया गया था। जिसमें विभिन्न विकास नियामकों के संयोजन वाले उपयुक्त माध्यम में वैदिक युग की खेती का प्रस्ताव किया गया था।

सीधे कली से एक अंकुर के गहन को प्रेरित करने का भी सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया है इस प्रणाली के आधार पर कमल को बदलने के लिए विभिन्न अध्ययन किये गये हैं। युग के शिखर कली से प्रेरित शूट को एक पीकैम्बिया 230। वेक्टर के साथ एक कण बमबारी उपकरण के माध्यम से सफलतापूर्वक रूपांतरित किया जा सकता है। यह विधि न केवल जीयूएस रिपोर्टर जीन के साथ सफल हुई है, बल्कि दो एंथेसायनिन बायोसिंथेसिस जीन डायहाइड्रोक्लेवोनोल 4–रिडक्टेस एंटी डीएफआर और चाल्कोन सिंथेज की एंटी सेंस के साथ भी सफल रही।

थाईलैंड समूह को छोड़कर कमल के परिवर्तन पर अभी भी कोई अन्य सफलतापूर्वक अध्ययन नहीं किया गया है, हालाँकि बहुत सारे शोधकर्ता इस पर काम कर रहे हैं। लेकिन अभी भी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने योग्यता और परिवर्तन की दक्षता के साथ–साथ एक उपयुक्त खेती के चयन पर चुनौतियां हैं। ऊतक संवर्धन तकनीक का प्रयोग करके कमल के प्रोडक्शन को बढ़ाया जा सकता है, इसमें अध्ययन की आवश्यकता है। एग्रोबैक्टीरियम मीडियेटेड परिवर्तन पर अभी तक कोई अध्ययन नहीं किया गया है। एग्रोबैक्टीरियम मीडिएटेड परिवर्तन तकनीक का उपयोग करके जीन के फंक्शन का पता लगाया जा सकता है। कम बमबारी की अपेक्षा यह तकनीक सस्ती है इसका उपयोग परिवर्तन के लिए किया जा सकता है।

सांस्कृतिक महत्व :

भारत में पवित्र कमल का पुराणों में भी उल्लेख है और इसके बारे में कई कहावतें और धार्मिक मान्यताएं भी हैं। हिंदू, बौद्ध और जैन धर्मों में इसका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। कमल को अत्यंत पवित्र, पूजनीय एवं सुंदरता, शांति–समृद्धि व बुराइयों से मुक्ति का प्रतीक माना गया है। कमल का फूल ऐश्वर्य तथा सुख का सूचक भी है इसीलिए कमल को पुखराज की भी संज्ञा दी गई है। यज्ञों व अनुष्ठानों में कमल के पुष्पों को निश्चित संख्या में चढ़ाने का शास्त्रों में वर्णन है।

निष्कर्ष और परिप्रेक्ष्य :

दक्षिण और पूर्वी एशिया में जनसंख्या के सामान्य जीवन के साथ–साथ बागवानी और औषधीय उपयोग में इसके महत्व के कारण कमल वैज्ञानिक समुदाय को अधिक से अधिक आकर्षित कर रहा है। इस पौधे के लगभग सभी पहलुओं पर बड़ी संख्या में अध्ययन किये गए हैं, जिनमें फाइलोजेनी और विकास, जीनोमिक्स, आनुवंशिक, प्रजनन और औषधीय उपयोग शामिल हैं। इसकी जीनोम की सूचना के जारी होने से जीनोमिक्स और आणविक आनुवांशिकी अध्ययन, इस पौधे के आर्थिक लक्षणों पर ध्यान केंद्रित करते हुए केंद्र में कदम रखा है, जो निस्संदेह कमल के प्रजनन में बहुत योगदान देगा। कमल 'इंडियन लोटस' में अभी तक विशेष कार्य नहीं किया गया है, इसमें अधिक से अधिक अध्ययन करने की आवश्यकता है जिससे देश को आर्थिक रूप से मदद मिल सके। इसकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिकों को इसमें अधिक अध्ययन करने की आवश्यकता है।

अभी भी कुछ सीमाएं हैं जो इस प्रजाति पर अध्ययन, विशेष रूप से आणविक जीव विज्ञान अध्ययन को बाधित करती हैं। इसके जीनोम की असेंबली और इनोवेशन को और भी बेहतर बनाने की आवश्यकता है। पुनर्जनन और परिवर्तन प्रणाली की कम दक्षता कमल पर आणविक आनुवंशिक अध्ययन को गंभीरता से रोकती है जो कि जीन फंक्शन अध्ययन के लिए एक पूर्वापेक्षा है। कमल के पौधे की अनिश्चित वृद्धि और लंबी उम्र है जो कम जगह में कमल की खेती को सीमित करता है।

कमल के बीज जब अपरिपक्व होते हैं तभी भी खाये जाते हैं और परिपक्व होने के बाद में भी खाये जाते हैं। औषधीय बहुमुखी प्रतिभा के साथ अल्कालॉइड फ्लेवोनोइड्स और कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे यौगिकों से उत्पन्न होते हैं।

अलग–अलग कमल की किस्मों में आकार और प्रति बीज के बीजों की संख्या अलग–अलग होती है। कमल के बीज उत्पादन में इसके पोषण के साथ–साथ इसकी उपज को भी बढ़ाना बहुत जरूरी है। इसे प्राप्त करने के लिए इसके विकास के दौरान कमल के बीजों पर तुलनात्मक प्रोटिओमिक्स और मेटाबोलामिक्स अध्ययन किये गये, केवल कमल के बीज के विकास पर समझ को गहरा करते हैं। इसके अलावा दो कमल के बीच तुलनात्मक ट्रांसक्रिप्टॉमिक विश्लेषण भी किया गया था, जिसमें बीज आकार और बीज संख्या प्रति सीडपोड दोनों में विपरीत फेनोटाइप्स थे।

प्रकंद की तरह ही बीज की उपज भी एक मात्रात्मक विशेषता है, जो आनुवांशिक पहलू पर अधिक अध्ययन की आवश्यकता है। औषधीय उपयोग के कारण बीज विकास के दौरान इसके चयापचयों पर एक व्यापक विश्लेषण करना आवश्यक है।

सेकेंड्री मेटाबोलाइट्स :

कमल में द्वितीयक चयापचय प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कमल के विभिन्न ऊतकों से फ्लेवोनाइड्स एवं एल्कलॉइड को निकालने की विधि को अनुकूलित करने के लिए व्यवस्थित अध्ययन किये गये हैं। कमल के विभिन्न ऊतकों मे विभिन्न द्वितीयक चयापचयों के वितरण को प्रोफाइल किया गया है। भारत के विभिन्न प्रांतों से कमल के जर्मप्लाज्म इकट्ठा करके प्रोफाइलिंग करके द्वितीयक चयापचयों का अध्ययन किया जा सकता है। इससे विभिन्न प्रकार के कमल के बीच द्वितीयक चयापचयों की मात्रा की विभिन्नता को जान सकते हैं। इसके अलावा विभिन्न मूल के कमल के जर्मप्लाज्म की जाँच में मदद मिलेगी। जर्मप्लाज्म का उपयोग या तो प्रजनन के लिए या कमल में विभिन्न चयापचयों के जैव संश्लेषण पर आगे के अध्ययन में मदद मिलेगी।

कमल के औषधीय उपयोग :

कमल का उपयोग खाद्य सामग्री के अलावा औषधीय रूप में भी किया जाता है। द्वितीयक चयापचयों के संभावित औषधीय उपयोग का भी मूल्यांकन किया गया है। हालाँकि प्रत्येक औषधीय उपयोग में कार्य करने वाले सटीक यौगिक अभी भी अज्ञात हैं। कृत्रिम चयन के माध्यम से, कमल में छोटे पौधों की वास्तुकला के साथ और कम जीवन काल के साथ कई किस्में प्राप्त की गईं, जो सजावटी बाजार में बहुत लोकप्रिय हैं और इन्हें 'वाल लियान' (कटोरा कमल) नाम दिया गया है। कमल को बागवानी पौधों का एक उभरता हुआ मॉडल माना जा सकता है। और पौधों में अद्वितीय विशेषताओं के कई पहलुओं का अध्ययन करने में उपयोग के लिए सक्षम हो सकता है।

जीतते वही लोग हैं,
जिनमे शौर्य, धैर्य,साहस,
सत्व और धर्म होता है

–हजारी प्रसाद द्विवेदी

कैनावेलिया : एक संभावित पौष्टिक फसल

कीर्ति पांडेय एवं चन्द्र शेखर मोहंती
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

पिछले कुछ दशकों में अनियंत्रित आबादी वृद्धि के कारण पर्याप्त पोषण की उपलब्धता में कमी को देखते हुए प्राकृतिक दलहनी फसलों के उत्पादन और मांग में बढ़ोत्तरी हुई है। भारत कुपोषण के दोहरे बोझ का सामना कर रहा है,जिसमें पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में 38 प्रतिशत कुपोषण (46.6 मिलियन) लगभग 15 प्रतिशत मोटापा और अधिक वजन (14.4 मिलियन) है। आई.सी.एम.आर. – आई.एन.डी.आई.ए.बी. के अध्ययन से पता चलता है कि मोटापे की व्यापकता भारत में 11.8–31.3 प्रतिशत के बीच है। गैर संचारी रोगों में वृद्धि के साथ, मैक्रोन्यूट्रिएंट्स की गुणवत्ता और मात्रा में संतुलन रखना महत्वपूर्ण है। दाल और दूध जैसे सुरक्षात्मक खाद्य पदार्थों की खपत में गिरावट आई है। आहार में उच्च प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थों को शामिल करना इंसुलिन प्रतिक्रिया में सुधार और मधुमेह को कम करने के साथ दृढ़ता से जुड़ा हुआ है।

चित्र संख्या–1 : *कैनावेलिया* प्रजाति का फलीय पादप

विकासशील देशों के विभिन्न आयु के लोग कई प्रकार के पोषण सम्बन्धी विकार जैसे वजन में कमी, शारीरिक एवं मानसिक विकास इत्यादि से प्रभावित हो रहे हैं। ऐसे में मुख्य धारा से दूर रहे दलहनी फसलें जिनमे प्रोटीन सम्बंधित विकारों से मुक्ति दिलाने का एक मात्र वैकल्पिक स्रोत है। इस तरह के दाल समूह के उत्पाद सस्ते एवं उपयोग करने मे सरल होते हैं। अप्रचलित दाल के समूह के अंतर्गत *कैनावेलिया* भी प्रोटीन युक्त बहुवर्षीय लता रूपी पादप है। *कैनावेलिया* फलियों के परिवार फैबेसी में, पौधों की प्रजाति है और इसमें *कैनावेलिया* की लगभग 48 से 50 प्रजातियाँ शामिल हैं। कम उपयोग की गयी फलियों में *कैनावेलिया* की कुछ सामान्य प्रजातियाँ हैं–*कैनावेलिया ग्लैडिएटा, कैनावेलिया एनसीफोर्मिस, कैनावेलिया रोजिया* एवं *कैनावेलिया वीरोसा*। हवाईद्वीप के लिए स्थानिक *कैनावेलिया* की प्रजातियों को मूल हवइम्यॉ द्वारा अविकीवीकी नाम दिया गया था। यह नाम "दि वैरी किक्क वन" में अनुवाद करता है। जीनस नाम प्रजाति के लिए मालाबार शब्द से लिया गया है, "कवावली" जिसका अर्थ है "पर्वतारोही"।

इस पौधे की लम्बाई 4.5 से 10 मीटर के बीच होती है। पत्तियाँ तिपतिया होती हैं जिसकी लम्बाई एवं चौड़ाई 10X6 से.मी. होती है। पत्तियों की निचली सतह रोयेंदार होती है। फूल आमतौर पर बैगनी, लाल, नीले या गहरे पीले होते हैं या कभी–कभी सफेद होते हैं। फूलों के पंखुड़ियों के नीचे पीले रंग का निशान होता है। वाह्य दलपुंज घंटीनुमा आकार का होता है। फलियाँ रैखिक–आयताकार थोड़े संकुचित होते हैं। जिनका आकार 15-40 से.मी. X 2.5–5 से.मी. होता है। फलियाँ कभी–कभी धनुषाकार और 8–16 बीजों की होती हैं। बीज आयताकार–दीर्घवृत्ताकार होते हैं, जिनकी लम्बाई–चौड़ाई 2–3.5 से.मी. X 1.5–2 से.मी. होती है। बीजों का रंग विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे सफेद, लाल, भूरा, काला इत्यादि। बीज नाभिका एक ऐसी विशेषता है जो बीज के अनुसार अलग–अलग होती है। बीज की ऊपरी सतह बहुत सख्त एवं मोटी होती है।

पोषण मूल्य

फलियों मे भण्डारण (70–80%) के साथ संरचनात्मक प्रोटीन (20–30%) होता है जो कोशिकाओं में असतत निकायों के रूप में स्थित होते हैं। प्रमुख खाद्य फलियों का प्रोटीन 22.3 से 39. 2% के बीच होता है, जिसमें से सोयाबीन बाहरी है। *कैनावेलिया* के बीजों में गेहूँ (8.55%), उबले चावल (7.7%) एवं अण्डे (12.6%) की तुलना में अधिक प्रोटीन होता है। भौगोलिक शैक्षिक विशेषताएं, *कैनावेलिया* के बीज प्रोटीन की मात्रा और गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। *कैनावेलिया* बीज में न्यूनतम प्रोटीन की मात्रा 22.4% से लेकर 24.9% तक होती है। *कैनावेलिया ग्लैडिएटा* और *कैनावेलिया एनसीफोर्मिस* में बीज प्रोटीन *कैनावेलिया कथार्टीका* की तुलना में अधिक होता है। 16 सप्ताह की खेती में *कैनावेलिया एनसीफोर्मिस* के बीज में प्रोटीन की मात्रा 28.18% हो जाती है जो इस पादप को चारा फली के रूप में नियोजित करने की सुविधा देता है।

प्रमुख फलियों के कुल लिपिड 1.0% से 46.79% तक होते हैं, जिनमे विंगड बीन (15.9%) सोयाबीन (21.3%) में और मूंगफली (46.7%) बाहरी है। आमतौर पर, *कैनावेलिया* के बीज में लिपिड कम होते हैं हालाँकि भारत में खपत होने वाली दालों की तुलना में *कैनावेलिया एनसीफोर्मिस* एवं *कैनावेलिया ग्लैडिएटा* में लिपिड की मात्रा अधिक होती है। *कैनावेलिया एनसीफोर्मिस* के बीज अपनी समृद्ध स्टार्च एवं अमाईलेज के कारण अपनी उर्जा के लिए जाने जाते हैं। इनमें अमाईलेज की मात्रा 287–350 ग्राम प्रति किलोग्राम होती है। *कैनावेलिया* की प्रजातियों में सामान्य रूप से उगाई जाने वाली दलहनी फसलों की तुलना में ऊर्जा की मात्रा अधिक होती है।

तालिका 1 : *कैनावेलिया* प्रजाति के बीज के आटे की अनुमानित संरचना सूखे वजन के आधार पर

अवयव	*कैनावेलिया कथार्टीका*	*कैनावेलिया एनसीफोर्मिस*	*कैनावेलिया ग्लैडिएटा*
नमी(%)	9.2	6.8	7.58
क्रूड प्रोटीन (ग्राम / 100 ग्राम)	35.5	30.62	27.48
क्रूड लिपिड (ग्राम / 100 ग्राम)	1.3	5.8	5.6
ऊर्जा मूल्य (केजे / 100 ग्राम)	1520	1632	1694
कच्चे कार्बोहाइड्रेट (ग्राम / 100 ग्राम)	52.8	53.86	61.15

पोषण विरोधी विशेषताएं

कैनावेलिया के कच्चे बीजों में पोषण विरोधी कारक भी पाए जाते हैं जिनमें फेनोलिक्स, टैनिन, सैपोनिन, कंकनावलिन ए, कैनावैनिन और हाइड्रोजन साइनाइड हैं। आजकल कुछ पोषण विरोधी कारक अपनी एंटी ऑक्सीडेंट गतिविधि के कारण एक संभावित स्वास्थ लाभ के रूप में उपयोग में लाये जा सकते हैं।

चित्र संख्या–2 : *कैनावेलिया* प्रजाति की फली

कंकनावलिन ए सबसे अधिक अध्ययन किया जाने वाला वनस्पति कारक लेक्टिन है जिसे पहली बार पृथक और क्रिस्टलीकृत किया गया था। *कैनावेलिया एनसीफोर्सिस* के बीज कंकनावलिन एक प्राकृतिक स्रोत हैं जो बीज के कुल प्रोटीन का 20% प्रतिनिधित्व करता है। *कैनावेलिया* की प्रजातियाँ रक्त की कोशिकाओं के खिलाफ मजबूत समूहन गतिविधि भी प्रदर्शित करता है। कंकनावलिन ए एक संभावित अणु है जिसे इम्मुनो–मॉडुलेशन द्वारा टयूमर के इलाज के लिए उपयुक्त माना जाता है। मैनोज बाइंडिग लेक्टिन ट्रांसजेनिक पौधों को कीट के प्रतिरोधी बनाने मे उपयोगी है।

कैनावैनिन एक गैर प्रोटीन विषाक्त एमिनो एसिड है जो दलहनी फसलों के बीजों में संग्रहित होता है जिसकी मात्रा 2500 मिलीग्राम से 4100 मिलीग्राम प्रतिग्राम होती है। यह "यल–आर्जिनिन" के अनुरूप है। *कैनावेलिया* की प्रजातियों के बीजों मे इसकी प्रचुर मात्रा में होता है और निष्कर्ष के लिए इसका व्यावसायिक रूप से दोहन होता है।

एल–डी.ओ.पी.ए. लिए एक गैर प्रोटीन है जो त्वचा के फटने का कारण बन सकता है और उच्च सांद्रता में मौजूद होने पर उपयोग करने वाले लोगों के शरीर के तापमान को भी बढ़ाता है। यह मतली, उलटी और एनोरेक्सिआ जैसे जठरांत्र सम्बन्धी गड़बड़ी पैदा करने के अलावा मतिभ्रम का कारण भी बताया गया है। एल–डी.ओ.पी.ए. एक न्यूरोटॉक्सिक एजेंट है जिसका उपयोग पार्किसंस रोग के उपचार में किया जाता है। एल–डी. ओ.पी.ए.के स्तर को कम करने के लिए बीजों को बार–बार भिगोकर या उबाल कर उपयोग किया जा सकता है।

भविष्य के पहलू

कैनावेलिया का बीज प्रोटीन, आवश्यक एमिनो एसिड, कार्बोहाड्रेट और ऊर्जा का एक समृद्ध स्रोत माना जाता है। *कैनावेलिया* की प्रजातियों में *कैनावेलिया मैरीटीमा* और *कैनावेलिया कथार्टीका* को सल्फर एमिनो एसिड का अच्छा स्रोत दिखाया गया है। इन प्रजातियों का अभी तक सबसे कम पता लगाया गया है और बड़े पैमाने पर खेती एवं संरक्षण के लिए प्रजनन कार्यक्रमों में शामिल किया जा सकता है। इनमें कई पोषण विरोधी कारक भी होते हैं जो उपभोक्ताओं पर प्रति कूल प्रभाव डाल सकते हैं। विभिन्न प्रकार के विषहरण आयोजित किये गए हैं। और पोषण विरोधी कारकों को कम करने अथवा उन्मूलन में भी सफल रहे हैं।

चित्र संख्या–3 : *कैनावेलिया* प्रजाति का बीज

कंकनावलिन ए का विभिन्न प्रकार के अनुप्रयोग जैसे रक्त समूहन पदार्थ और इम्मुनोमोडुलेटर की तरह हैं। कैनावाईन एक कैंसर विरोधी एजेंट इससे मुख्य रूप से अग्नाशय के कैंसर के अध्ययन में नियोजित किया जा सकता है। इन जीन पूल में विटामिन के ज्ञान का एक स्पष्ट अंतर है *कैनावेलिया* का विभिन्न भू–भागों का उपयोग रोटेशन फसल के रूप में, आवरण फसल और पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले और द्वितीय चयापचयों की आगे जांच की जानी है।

टेरिडोफाइट्स के औषधीय तथा भोज्य पदार्थों के लोक–वनस्पति महत्व पर एक परिचर्चा

निवेदिता मल्ल एवं अजीत प्रताप सिंह
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पौधों पर निर्भर रहा है। पौधों का उपयोग औषधि के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में कालांतर से किया जाता रहा है। आज भी कई आदिवासी और ग्रामीण समुदाय विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए आस–पास के वन क्षेत्रों से प्राप्त पौधों अथवा अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। लोक–वनस्पति विज्ञान, पादप विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत मानव समाज द्वारा पौधों का लोकहित में विभिन्न तरह से उपयोग में लाये जाने वाली विधा का अध्ययन किया जाता है। लोक–वनस्पति विज्ञान पौधों का लोकहित में उपयोग, वर्गीकरण, खेती, भोजन, दवा, चारा और आश्रय के रूप में उपयोग करने का स्वदेशी या पारम्परिक ज्ञान है। अतैव लोक वनस्पति विज्ञान मानव समाज का अन्तर्निहित परम्परागत ज्ञान (पौधों से संबंधित) जैसे चिकित्सा पद्धति आदि का विषय है।

भारतीय पारम्परिक चिकित्सा आदिवासी अथवा विभिन्न जनजातीय समुदायों द्वारा स्वदेशी विधि से पौधों अथवा प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी जैसी विभिन्न प्रणालियों पर आधारित है। भारतवर्ष में पौधों की अधिकता प्राकृतिक वनों में पायी जाती है। सम्पूर्ण पौध जगत में टेरिडोफाइट्स समुदाय (फर्न और उसके सहयोगी पौधे) के पौधे सामान्यतयाः आकार में छोटे, अपुष्पीय, बीजाणुजनक होते हैं तथा नम व छायादार स्थान पर पाए जाते हैं जैसे–*एडियंटम* प्रजाति, *टेरिस* प्रजाति, *ह्यूपरज़िया* प्रजाति, *लाइकोपोडियम* प्रजाति आदि। ये मुख्य रूप से हिमालय, पश्चिमी घाट, मध्य भारत और उत्तर पूर्वी भारत में पाए जाते हैं तथा उत्पत्ति एवं विकास के क्रम में अपुष्पीय तथा पुष्पीय पौधों के मध्य में रखे गए हैं।

हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार, संजीवनी बूटी व्यक्ति को पुनर्जीवित करने की क्षमता रखती है। वाल्मीकि रामायण में युद्धकाण्ड प्रकरण में वर्णित है कि सुषेन वैद्य ने हनुमानजी को द्रोणागिरि पर्वत से जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए पौधे जैसे–मृतसंजीवनी (जीवित करने के लिए), विशल्यकरणी (तीर निकालने के लिए), संधानकरणी (क्षतिग्रस्त त्वचा को ठीक करने) और सुवर्ण्यकरणी (त्वचा के रंग को ठीक करने के लिए) लाने के लिए कहा था। इन पुनर्जीवित करने वाली औषधीय जड़ी बूटी को देने के बाद ही लक्ष्मण जी को होश आया। इस प्रकार से इन जड़ी–बूटियों में पुनर्जीवित करने की क्षमता थी। कालान्तर से *सेलाजिनेला ब्रायोप्टेरिस* को संजीवनी के रूप में सुझाया गया है। सुश्रुत (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) ने अपनी संहिताओं में विभिन्न टेरिडोफाइट्स के उपयोग का वर्णन किया है। सुश्रुत और चरक (100 ईस्वी) ने प्रसिद्ध पुस्तक 'संहिता' में *मार्सीलिया माईनूटा* और *एडियंटम कैपिलस–वेनेरिस* के उपयोग की विशेषता बताई थी। *पॉलीस्टिकम स्क्वारोसम* का प्रकंद (जिसे भारत में 'निर्विरी' के रूप में जाना जाता है) बिच्छू और कीड़े के काटने के उपचार में प्रभावी रूप से उपयोग किया जाता है। थियोफ्रेस्टस (327–287 ईसा पूर्व) और डायोस्कोराइड्स (50 ईस्वी) ने भी कुछ फर्न के औषधीय गुणों का उल्लेख किया था।

टेरिडोफाइट में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्त्व, पोषक तत्त्व, खनिज पदार्थ, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा आदि पाए जाते हैं। इन विभिन्न तत्वों की उपलब्धता के कारण इन पौधों का उपयोग आदिवासी, जनजाति अथवा आधुनिक समाज द्वारा औषधीय, भोजन, सजावट, निर्माण कार्य आदि के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। टेरिडोफाइट्स के बहुआयामी महत्व के कारण समय–समय पर लोक–वनस्पति विज्ञान संबंधी अध्ययन किए गए हैं जिनमें कैयस (1935) ने पहली बार भारत के फर्न की औषधीय उपयोगिता का वर्णन किया है। बाद में नायर (1957), चौधरी (1973), व्यास और शर्मा (1988) और पडाला (1988) ने लोक–वनस्पति विज्ञान और औषधीय उपयोग में योगदान दिया। कौशिक और धीमान (1995) तथा सिंह और खरे (2011) ने भारत के सामान्य औषधीय टेरिडोफाइट्स पर एक संकलित लेख प्रकाशित किया। वासुदेव (1999), रेड्डी व अन्य (2001), सिंह व अन्य (2001), गोगोई (2002), सिंह व अन्य (2008 ए, 2008 बी), चेन व अन्य (2005ए, 2005बी) ने भी समय–समय पर लोक–वनस्पति विज्ञान के अध्ययन में योगदान दिया है।

1. कुछ औषधीय टेरिडोफाइट्स

भारत के गाँवों में कुछ पारम्परिक चिकित्सक हैं जो पेशेवर रूप से विशिष्ट औषधीय उपचार का अभ्यास करते हैं। इस प्रकार इन लोगों के बीच एक प्रभावी स्थानीय स्वास्थ्य परम्परा मौजूद है और यह चिकित्सीय ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से स्थानान्तरित की जाती रही है।

कई फ़र्न प्रजातियों का उपयोग समुदायों द्वारा स्वदेशी पारम्परिक चिकित्सा में किया जाता है और ये प्रजातियाँ आज के समय में दवा की खोज के स्रोत हैं। टेरिडोफाइट्स की लगभग 32 कुल, 102 वंश से संबंधित 283 प्रजातियों का उपयोग विभिन्न आदिवासी व जनजातियों द्वारा पारम्परिक चिकित्सा के रूप में किया जाता है। फर्न में कई सक्रिय जैव रासायनिक यौगिक पाए जाते हैं जो उन्हें यह औषधीय गुण प्रदान करते हैं। द्वितीयक मेटाबोलाइट्स जैसे–फ्लेवोनोइड्स में सूजन–रोधी गुण होते हैं। उनमें एंटीऑक्सिडेंट, कैंसररोधी और रोगाणुरोधी गुण भी पाए गए (लिन. व अन्य 2008, योशिदा व अन्य 2008, अमरल व अन्य 2009, लोपेज़ एवं लाज़ारो 2009, गोविंदप्पा व अन्य 2011)। सेसक्विटेरपीन्स में कैंसररोधी,

चित्र संख्या-1 a-h : उपचार हेतु उपयोग किए जाने वाले कुछ औषधीय टेरिडोफाइट्स

(a) *एडियंटम कैपिलस–वेनेरिस*

(b) *ब्लेकनम ओरिएंटेल*

(c) *सायथिआ स्पाइनुलोसा*

(d) *डिक्रैनॉप्टेरिस लीनियरिस*

(e) *ड्रायोप्टेरिस कॉचिलिआटा*

(f) *इक्विसेटम रैमोसिसिमम*

(g) *साइलोटम नूडम*

(h) *टेरिस विट्टाटा*

सूजनरोधी, साइटोटोक्सिक, पौधों की वृद्धि–नियामक और रोगाणुरोधी गुणों सहित औषधीय गतिविधि की एक विविध श्रेणी है। इनमें पाए जाने वाले फैटी एसिड जैसे– मिरिस्टिक, पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक–लिनोलिक और इकोसैट्रिएनोइक एसिड व्यापक रूप से सूजनरोधी के रूप में जाने जाते हैं। स्टीयरिक एसिड में सूजनरोधी और *हिपैटोप्रोटेक्टिव* प्रभाव होते हैं (पैन व अन्य 2010)। भास्करन व जयचंद्रन (2010) ने *टेरिस ट्राईपार्टिटा* के इथेनॉल निचोड़ में ऑक्टाडेकेनोइक एसिड पाया था जो औषधीय गुण में महत्वपूर्ण है। इसी तरह *टेरिडियम एक्विलिनम* में कैंसररोधी गुण पाए जाते हैं। टेरिडोफाइट्स की *सेलाजिनेला* प्रजाति में बायोएक्टिव फ्लेवोन जैसे– एमेंटोफ्लेवोन, रोबस्टाफ्लेवोन, बायपीजेनिन, हिनोकिफ्लेवोन और जिन्कगेटिन की उपलब्धता होने के कारण इनमें एंटीऑक्सिडेंट, एंटीवायरस और कैंसररोधी गुण पाए जाते हैं। *ह्यूपरज़िया क्वॉड्रीफ़ारिआटा* और *ह्यूपरज़िया रिफ्लेक्सा* में विशिष्ट रासायनिक यौगिक ह्यूपरज़िन–ए और ह्यूपरज़िन–बी की उपलब्धता के कारण ये अल्जाइमर व मष्तिष्क से सम्बंधित रोग को ठीक करने के लिए उपयुक्त हैं।

ड्रायोप्टेरिस कॉचिलिआटा का अर्क सांप के काटने पर उपचार के लिए किया जाता है। इस पौधे के राइज़ोम के पाउडर को पानी के साथ सेवन कर गठिया और कुष्ठ रोग को ठीक किया जाता है। *ब्लेकनम ओरिएंटेल* के पूरे पौधे का उपयोग कृमिनाशक और टाइफाइड के उपचार के रूप में किया जाता है। *एडियंटम कॉडैटम* पीलिया, खुजली, पेट दर्द और कब्ज का इलाज करता है।

इस प्रकार रोगों के उपचार हेतु उपयोग किए जाने वाले सक्रिय बायोएक्टिव यौगिकों के साथ कुछ औषधीय फ़र्न (चित्र संख्या–1) नीचे सारणी संख्या–1 में सूचीबद्ध हैं :–

सारणी संख्या – 1

क्र.	पौधे का नाम	स्थानीय नाम	इस्तेमाल किया गया पौधों का हिस्सा	उपचारी रोग	पौधों में पाए जाने वाले जैव सक्रिय यौगिक
1	*एडियंटम कैपिलस–वेनेरिस*	हंसराज, पुरसा	संपूर्ण पौधा	मधुमेह रोग निवारक (हाइपोग्लाइसेमिक), सूजनरोधी	एस्ट्रैगैलिन, बीटा– सिटोस्टेरॉल, कैफिक एसिड, कैफिल गैलेक्टोज, कैफिलग्लुकोज, कैंपेस्टरोल
2	*ब्लेकनम ओरिएंटेल*	बड़ा फर्न	पर्ण, प्रकंद	ज्वर, कृमि संक्रमण, स्वेदजनक	फ्लेवोनोइड्स, टरपींस, फिनोल
3	*सायथिआ स्पाइनुलोसा*	कर्कश वृक्ष फर्न	संपूर्ण पौधा	बालों का सफेद होना, पर्ण का उपयोग सूडोरिफिक और कामोद्दीपक के रूप में उपयोग किया जाता है	बीटा–सिटोस्टेरॉल
4	*डिक्रैनॉप्टेरिस लीनियरिस*	राजहंस	पर्ण	कृमिनाशक, दमारोधी	फ्लेवोनोइड्स, टरपींस, फिनोल, एस्ट्रागारिन, रुटिन
5	*ड्रायोप्टेरिस कॉचिलिआटा*	मांझी बूटी	नवीन पर्ण, सूखे प्रकंद	मिर्गी, कुष्ठ रोग	2,2–डी फिनाइल–1–पिक्रिलहाइड्राजाइल (डीपीपीएच) में एंटीऑक्सीडेंट गुण, सुपरऑक्साइड
6	*इक्विसेटम रैमोसिसिमम*		तना, प्रकंद, शंकु	मूत्रवर्धक, रक्तस्राव, सुजाक, जोड़ों का दर्द, फफूँद का संक्रमण, गुर्दा विकार	एपिजेनिन और ल्यूटोलिन

7	*टेरिडियम एक्वीलिनम*		संपूर्ण पौधा	कृमि क्लीनर, पेट में ऐंठन से राहत और मूत्र प्रवाह बढ़ाता है	पी– कॉउमैरिक एसिड, पी–हाइड्रॉक्सीबेन्जोइक एसिड, कैफिक एसिड, फेरुलिक एसिड, वैनिलिक एसिड, काएम्फेरोल, क्वेरसेटिन और एपिजेनिन
8	*टेरिस विट्टाटा*		पर्ण, प्रकंद	घाव, जला हुआ, जीवाणुरोधी	रुटिन, काएम्फेरोल मोनोग्लाइकोसाइड, काएम्फेरोल डाइग्लाइकोसाइड, क्वेरसेटिन मोनोग्लाइकोसाइड और क्वेरसेटिन डाइग्लाइकोसाइड
9	*सिलाजिनेला वैलिचाई*		संपूर्ण पौधा	बच्चे के जन्म और खांसी के बाद सुरक्षात्मक दवा	एमेंटोफ्लेवोन, रोबस्टाफ्लेवोन, बायपीजेनिन, हिनोकिफ्लेवोन, पोडोकार्पसफ्लेवोन और जिन्कगेटिन
10	*साइलोटम नूडम*		बीजाणुओं	दस्त	क्वेरसेटिन, काएम्फेरोल, एमेंटोफ्लेवोन, हिनोकिफ्लेवोन, विसेनिन–2 साइलोटिन और 3 हाइड्रॉक्सीप्सिलोटिन

इस प्रकार हम कह सकते हैं की फ़र्न में महत्वपूर्ण औषधीय गुण पाए जाते हैं। फ़र्न का प्रयोग हम आधुनिक समाज में इस्तेमाल कर मानव कल्याण हेतु उपयोग में ला सकते हैं। लेकिन उनकी जैविक गतिविधियों के लिए केवल कुछ ही प्रजातियों का विश्लेषण किया गया है। इसलिए वनस्पति विज्ञानी जैव तकनीकी उपकरणों का उपयोग कर रोगों के उपचार और मानव जाति के लाभ के लिए जैव सक्रिय यौगिकों को बढ़ा सकते हैं।

2. खाने योग्य कुछ महत्वपूर्ण टेरिडोफाइट्स

भारत विश्व में जनसंख्या में दूसरे स्थान पर है। जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण देश में उपलब्ध संसाधनों पर तेजी से दबाव पड़ रहा है। जिससे मनुष्य की निज़ी सुविधाओं पर असर पड़ रहा है तथा पोषित आहार न उपलब्ध हो पाना एक जटिल समस्या बनती जा रही है।

फलों, सब्जियों के रूप में मनुष्यों द्वारा खाए जाने वाले अधिकांश भोजन खेती या जंगली पौधों के रूप में उपलब्ध हैं। स्थानीय या क्षेत्रीय व्यंजनों में उपयोग की विधि वहाँ की संस्कृति, समुदाय, भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर निर्भर करती है। जंगली खाद्य पौधों एवं खाद्य वनस्पति विज्ञान में हाल के वर्षों में अनेक शोध हुए हैं, जिनमें एक पौध समूह फर्न और उसके सहयोगी पौधे हैं। फर्न का उपयोग कई आदिवासियों तथा जातीय समुदाय जैसे– तंगखुल, मैतेईस, हमार, पाइते, बोडो, राभा, कार्बी, देउरी, असमिया मिजो, हमार चकमा, त्रिपुरी चकमा, खासी, कुकी आदि द्वारा लंबे समय से भोजन के रूप में किया जाता रहा है। ये जन–जातियाँ प्रायः फ़र्न के नवीन पर्ण को ही उपयोग में लाते हैं। इन नवीन पर्ण को आधुनिक समाज में क्रोजिएर के नाम से (चित्र संख्या–2) जाना जाता है।

स्थानीय व्यंजन बनाने के लिए फ़र्न व अन्य पौधों का उपयोग कच्चे या पके हुए रूप में होता है। सात मुख्य प्रकार जैसे– चटनी, वेजिटेबल सलाद, स्टू वेजिटेबल सूप, भाजी, खीर, पकौड़ी और चाय अथवा हर्बल टी के रूप में फर्न का उपयोग करते हैं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों, भारत के पूर्वोत्तर, पश्चिमी हिमालय, तराई, पश्चिमी घाट एवं आदिवासी क्षेत्रों में फ़र्न के विभिन्न पौधे जैसे– *डिप्लेजियम एस्कुलेंटम, ओफिओग्लोसम रेटिकुलेटम, एंजिओप्टेरिस इवेक्टा, एम्पिलोप्टेरिस प्रॉलीफेरा* आदि हरी सब्जी, शाक, सलाद तथा सूप के रूप में उपयोग में लाये जाते हैं।

कुछ फ़र्न के पोषक तत्वों का आकलन किया गया है, जिससे ज्ञात हुआ है कि इनमें विटामिन–सी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, अपरिष्कृत वसा आदि पाए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप *डिप्लेजियम एस्कुलेंटम* में विटामिन–सी की मात्रा 24.4 मिलीग्राम/100 ग्राम होती है। इसी तरह *डिप्लेजियम एस्कुलेंटम* में प्रोटीन 3.6 ग्राम/100 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 2 ग्राम/100 ग्राम तथा अपरिष्कृत वसा 1.06 % पायी जाती है। *एंजिओप्टेरिस* इवेक्टा में पाए जाने वाले पोषक तत्वों के अध्ययन से भी ज्ञात हो चुका है कि इसमें प्रोटीन की मात्रा 1.9 %, वसा 0.70% तथा कार्बोहाइड्रेट 16.72% पायी जाती है। पोषक तत्त्व की उपलब्धता के आधार पर फ़र्न अन्य सब्जियों के अपेक्षा अत्यधिक उपयोगी साबित हो सकते हैं। ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण खाने योग्य फ़र्न (चित्र संख्या–2) नीचे सारणी संख्या–2 में सूचीबद्ध हैं।

चित्र संख्या - 2 a-h : भोज्य पदार्थों के रूप में उपयोग किए जाने वाले कुछ टेरिडोफाइट्स

(a) फर्न का *क्रोजिएर*

(b) *एंजिओप्टेरिस* प्रजाति

(c) *माइक्रोसोरम पंकटैटम*

(d) *नेफ्रोलेपिस कॉर्डीफ़ोलिया*

(e) *साल्वीनिआ कुकुलाटा*

(f) *सायथिआ* प्रजाति

(g) *डिप्लेजियम एस्कुलेंटम*

(h) *ओफिओग्लोसम रेटिकुलेटम*

सारणी संख्या – 2

क्र.	पौधे का नाम	इस्तेमाल किया गया पौधों का हिस्सा	उपयोग
1	*एंजिओप्टेरिस* प्रजाति	गूदेदार शिखर भाग	स्टार्च प्राप्त किया जाता है।
2	*मार्सीलिया ड्रम्मोन्डी*	स्पोरोकार्प	ब्रेड बनाने के लिए पेस्ट के रूप में उपयोग किया जाता है। आदिवासी द्वारा भुखमरी में भोजन के रूप में उपयोग।
3	*माइक्रोसोरम पंकटैटम*	नवीन पर्ण	सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।
4	*ह्यूपरज़िया फ्लेगमैरिआ*	नवीन स्पोरोफिल एवं बीजाणु	इसका चूर्ण हर्बल चाय के रूप में उपयोग किया जाता है।
5	*नेफ्रोलेपिस कॉर्डीफ़ोलिया*	भूमिगत प्रकंद,	खेती की जाती है तथा आधा उबला हुआ सलाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
6	*नेफ्रोलेपिस बाईसेर्राटा*	भूमिगत प्रकंद, नवीन पर्ण	खेती की जाती है तथा आधा उबला हुआ प्रकंद व नवीन पर्ण सलाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
7	*साल्वीनिआ कुकुलाटा*	संपूर्ण पौधा	ऊँट, खार और करची की तैयारी में उपयोग किया जाता है।
8	*स्टेनोक्लेना पोलैस्ट्रिस*	नवीन पर्ण	सब्ज़ी का सूप कांग–सोई की तरह इस्तेमाल किया जाता है।
9	*एसप्लीनियम एट्रोब्रायम*	अवशिष्ट राख	नमक की तरह इस्तेमाल किया जाता है।
10	*सायथिआ* प्रजाति	मज्जा	स्टार्च प्राप्त किया जाता है तथा सब्ज़ी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
11	*आइसोयाइटिस डेबिआई*	संपूर्ण पौधा	पकौड़ी बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
12	*डिप्लेजियम एस्कुलेंटम*	नवीन पर्ण	आम भाषा में ढेकिया के नाम से जाना जाता है। हरी सब्जी, शाक, सलाद व सूप के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
13	*ओफिओग्लोसम रेटिकुलेटम*	नवीन पर्ण, संपूर्ण स्पोरोफिल	हरी सब्जी व सलाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

आदिवासियों और स्थानीय समुदायों द्वारा फ़र्न का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है परन्तु आम लोगों द्वारा फ़र्न का उपयोग अभी भी कम ही ज्ञात है। इसका मुख्य कारण फ़र्न के उपयोग से सम्बंधित पारम्परिक ज्ञान से अनभिज्ञ रहना है। उदाहरणार्थ *सायथिआ मैग्ना* और *सायथिआ एंजिनिस* का तना न्यूगिनी के हाइलैंड्स में पिकेट–बाड़ के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके लिए तना और रैकिस को मजबूत स्क्लेरोटिक संवहनी के साथ प्रबलित किया जाता है जिससे एक मजबूत एवं अच्छी बाड़ बनती हैं। इसी तरह *डिक्रैनॉप्टेरिस लीनियरिस* और *सायथिआ स्पाइनुलोसा* का उपयोग भारत में छप्पर बनाने में उपयोग किया जाता हैं। परन्तु फ़र्न के इस प्रकार के बहुआयामी उपयोगों से आम जन मानस अनभिज्ञ है। अतैव मानव जाति के लाभ के लिए टेरिडोफाइट्स के औषधीय तथा भोज्य पदार्थों के अध्ययन के साथ–साथ इनके विभिन्न उपयोगों, पौष्टिक और स्वास्थ्य लाभों के मूल्यांकन में व्यापक पैमाने पर प्रचार और अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता हैं।

निष्कर्ष :

लोक–वनस्पति विज्ञान संबंधी अध्ययनों के माध्यम से पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण, जैविक संसाधनों के संरक्षण और उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है। लोक–वनस्पति विज्ञान की जानकारी सक्रिय जैविक यौगिकों की नई खोज के लिए आधार के रूप में कार्य करती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि टेरिडोफाइट्स में कई महत्वपूर्ण गुण होते हैं जिनका उपयोग आधुनिक युग में मानव जाति के लाभ के लिए किया जा सकता है। अतैव टेरिडोफाइट्स पौधों के पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण, विभिन्न उपयोगों, औषधीय गुण, भोज्य पदार्थों, पोषक तत्वों और पौष्टिक स्वास्थ्य लाभों से सम्बंधित विषय पर अध्ययन व अनुसंधान करने की विशेष आवश्यकता है।

भारत में पुष्पकृषि : एक अवलोकन

अतुल बत्रा एवं एस. के. तिवारी
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

मानव जीवन में पुष्पों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। हर प्रकार के आयोजन में इनका उपयोग होता है। यही कारण है कि फूलों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अतः आज के युग को फूलों का युग कहा जाता है। भारत विश्व का शायद मात्र एक देश है जो पूरे वर्ष कम लागत में लगभग हर प्रकार के पुष्पों का उत्पादन कर सकता है। फूलों से भरे भारतवर्ष की ओर एक विहंगम दृष्टि डालने से हमें यह ज्ञात होता है कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक विभिन्न प्रदेश वनस्पति सम्पदा से भरपूर हैं।

चित्र संख्या–1 : गुलदाउदी का पुष्प

शोभाकारी पुष्पों को उगाने की कला के उल्लेख हमारे देश में लगभग 3000 ईसा पूर्व से मिलते हैं। पौधों को बीज एवं कलम से उगाने की विधियों के उल्लेख वेदों मे मिलते हैं। देश मे खुले (लूज) पुष्पों के रूप में गेंदा, जूही, चमेली, गुलदाउदी व गुलाब प्रमुख हैं तथा कट पुष्पों के रूप में गुलदाउदी, गुलाब, कारनेशन, जरबेरा, एंथूरियम आदि का प्रमुख रूप से उत्पादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त पुष्पों द्वारा तैयार उत्पाद जैसे गुलाब की पंखुड़ी से तैयार गुलाब जल, गुलकंद व अन्य पुष्प जैसे बेला, चम्पा, चमेली आदि के द्वारा सुगन्धित तेल, इत्र निकाला जाता है। गृह सज्जा में पुष्पों का उपयोग तथा महिलाओं के द्वारा केश सज्जा में चम्पा तथा चमेली एवं कर्णों की सज्जा हेतु सीरिस का उपयोग प्राचीनकाल से होता चला आया है।

वर्तमान में भारत के विभिन्न राज्यों में पुष्पों का उत्पादन होता है, जिनका वर्णन इस प्रकार है:

भारत में लूज (खुले) एवं कट पुष्प उत्पादन के प्रमुख राज्य :

लूज (खुले) पुष्प उत्पादन के प्रमुख राज्य :

आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल।

कट पुष्प उत्पादन के प्रमुख राज्य :

असम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, मिजोरम, तमिलनाडु, नागालैंड, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल।

भारत से खाड़ी देशों को पौधे निर्यात किये जाते हैं तथा पुष्प जर्मनी, नीदरलैंड, इटली तथा अमेरिका आदि देशों में भेजे जाते हैं। पुष्पकृषि को भारत में बढ़ावा डॉ बी.पी.पाल एवं डॉ एम.एस.रंधावा के शोध कार्यों से मिला। शोभाकारी पुष्पीय पौधों में शोध कार्य को बढ़ावा तब मिला जब सन 1957 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने एक नई दिशा का निर्धारण किया। तत्पश्चात् भारत के विभिन्न प्रदेशों मे शोभाकारी पुष्पीय पौधों में शोध कार्य आरम्भ हुआ।

भारत में पुष्प अनुसंधान के अग्रणी संस्थान :

- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (वै.औ.अ.प., नई दिल्ली)
- हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर (वै.औ. अ.प., नई दिल्ली)
- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
- राष्ट्रीय शोध केन्द्र, सिक्किम (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली)
- भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलुरू (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली)
- भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुंबई (भारत सरकार)

चित्र संख्या–2 : गेंदा का पुष्प

चित्र संख्या–3 : ग्लैडीओलस का पुष्प

- भा.कृ.अनु.प.–पुष्पविज्ञान अनुसंधान निदेशालय, पुणे, महाराष्ट्र
- गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर ,उत्तराखंड
- महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुरी, अहमदनगर
- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, (भारत सरकार) एवं इसके क्षेत्रीय केन्द्र
- क्षेत्रीय पौध संसाधन केन्द्र, भुवनेश्वर
- बिधानचन्द्र कृषि विश्वविद्यालय कल्याणी, कोलकाता
- वनस्पति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- कोलकाता विश्वविद्यालय, कोलकाता
- पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना
- राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारत में उगाये जाने वाली प्रमुख पुष्पीय फसलें :

खुले (लूज) पुष्प : खुले फूल वह हैं जिसे पौधे से तने के बिना निकाला जाता है। ये आमतौर पर माला बनाने व मंदिरों में चढ़ाने हेतु उपयोग में लाया जाता है। जैसे– गेंदा, गुलाब, गुलदाउदी, बेला, चांदनी, गुड़हल आदि।

कट पुष्प : कट पुष्प वह जिनको उनके तने के साथ तोड़ा जाता है। इन फूलों को गुलदस्ता बनाने में व शादी विवाह के अवसर में प्रयोग में लाया जाता है। इनकों उगाने की विधि दो प्रकार है, खुले में और पालीहाउस में। खुले में उगाये जाने वाले फूलों मे गुलदाउदी, गुलाब, ग्लैडीओलस, रजनीगंधा, लिली व एस्टर प्रमुख हैं। जब कि पालीहाउस में उगाये जाने वाले फूलों में एच टी गुलाब, जरबेरा, कारनेशन, आर्किड आदि हैं।

पुष्प उत्पादन की प्रमुख समस्याएं :

भारत में फूलों की खेती काफी समय से होती रही है परन्तु आर्थिक रूप से लाभदायक एवं व्यवसाय के रूप में पुष्पों का उत्पादन पिछले कुछ वर्षों से ही प्रारम्भ हुआ है। वर्तमान में भी पुष्प कृषि व्यापार में भारत का योगदान अंतर्राष्ट्रीय पुष्प बाजार में काफी कम है जिसके निम्न कारण हैं :

- देश में पाली हाउस का अभाव होने के कारण अधिकांश पौधों को खुले में उगाया जाता है।
- प्रशिक्षित मजदूरों का अभाव
- पर्याप्त वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव
- अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पुष्प भेजने हेतु उच्च कोटि के गुणवत्ता वाले बीजों का अभाव
- पुरातन तकनीक अपनाकर खेती करना
- मूल्यों में काफी उतार–चढ़ाव का होना
- उचित भंडारण गृह एवं शीतगृहों का अभाव
- पुष्पों का संग्रहण, पैकिंग तथा वातानुकूलित तेज गति से चलने वाले वाहनों का उपलब्ध न होना।

पुष्प उत्पादन में समस्याओं का संभावित समाधान

पुष्प व्यापार को बढ़ावा देने के लिये भारत सरकार निरंतर प्रयास कर रही है। कई शोध संस्थानों ने भी इस विषय को गंभीरपूर्वक लिया है। वे अलग–अलग ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर किसानों को पुष्पकृषि के बारे में आवश्यक जानकारी व उसके द्वारा अर्जित लाभ के विषय में बताने का प्रयास कर रहे हैं।

चित्र संख्या–4 : गुलाब का पुष्प

नीचे वर्णित कुछ बिंदुओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है :

- किसानों द्वारा सहकारी समिति बनाकर समूह में पुष्प का उत्पादन एवं विपणन करना चाहिए
- किसानों को उचित प्रशिक्षण देना चाहिए
- प्रमाणित नर्सरी एवं बीज उत्पादन सम्बन्धी संस्थानों को बढ़ावा देना चाहिए
- पुष्प की भंडारण क्षमता बढ़ाने हेतु उचित अवस्था पर तुड़ाई करना चाहिए
- अधिक समय तक भंडारण क्षमता वाली किस्मों का रोपण करना चाहिए
- पुष्पों को उचित विक्रय मूल्य हेतु शीतगृह एवं भण्डारण गृह का निर्माण करना चाहिए
- नए बाजार की खोज तथा आधुनिक साहित्य उपलब्ध कराने में पूर्ण सहायता प्रदान करना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा चलाये गये कार्यक्रम व नीतियाँ :

कृषि मंत्रालय के अंतर्गत **"कृषि और सहकारिता विभाग"** फूलों की खेती के क्षेत्र में विकास हेतु एक नोडल संगठन है। यह संगठन देश की भूमि, जल, मिट्टी और पौधों के संसाधन के इष्टतम उपयोग के माध्यम से तेजी से कृषि विकास को प्राप्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार हैं। इसी प्रकार कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्रधिकरण फूलों सहित कृषि निर्यात को बढ़ावा देने का कार्य करता है। इस संगठन ने देश से फूलों की खेती के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं।

राष्ट्रीय बागवानी मिशन 2005–06 राष्ट्र में शुरू की गई एक केंद्र प्रायोजित योजना है, जो क्षेत्रीय रूप से विभेदित रणनीतियों के माध्यम से फार्म हाउसों और अन्य पोषण सुरक्षा और आय समर्थन को बेहतर बनाने के लिए है। भारत सरकार एग्री एक्सपोर्ट जोन की स्थापना के लिए सहायता करती है और सुविधा प्रदान करती है। वर्तमान में, फूलों की खेती के विकास के लिये छह ऑपरेशनल ए ई जेड हैं।

फूलों की खेती के लिए कृषि निर्यात क्षेत्रों की सूची

प्रदेश	जिला / क्षेत्र
तमिलनाडु	धरमपुर
उत्तराखण्ड	देहरादून, पंतनगर
महाराष्ट्र	पुणे, नाशिक, कोल्हापुर व सांगली
कर्नाटक	बंगलुरू (शहर), बंगलुरू (ग्रामीण), कोलर, तुमकुर व बेलगाम
सिक्किम	पूर्वी सिक्कम
तमिलनाडु	जिला नीलगिरी

भारत में पुष्पकृषि का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि हमारे देश की भौगोलिक स्थिति पुष्पकृषि के लिये अति उत्तम है। यहाँ पर शोभकारी पुष्पों की अनेक प्रजातियाँ पुष्पकृषि के लिये उपयुक्त हैं। समकालिक पुष्प जैसे गुलाब, कमल, ग्लैडिओलस, रजनीगंधा, कारनेशन आदि के बढ़ते उत्पादन के कारण गुलदस्ते व उपहारों स्वरूप देने में इसे गंभीरतापूर्वक लिया गया है तथा अनेक नए उपाय व कार्यक्रम उभर कर आ रहे हैं। देश के अग्रणी अनुसंधान संस्थान वै.औ.अ.प. ने देश में पुष्पकृषि को बढ़ावा देने के लिए "फ्लोरी कल्चर" मिशन तैयार किया है जिसमें अनेक अग्रणी संस्थान मिलकर कार्य करेगें। यह सभी तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि निकट भविष्य में भारत का पुष्पकृषि के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा योगदान होगा तथा इसके माध्यम से हमें विदेशी मुद्रा भी अर्जित होगी।

"मंजिल को पाने की दिशा में आगे बढ़ते
हुए याद रहे कि मजिल की ओर बढ़ता
रास्ता भी उतना ही नेक हो"

–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

पीली सतावर

भगवानदास
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

पीली सतावर का पादप धरती पर लेटकर या किसी झाड़ू के सहारे न चलकर धरती पर खड़े होकर आगे बढ़ता है। इसका वानस्पतिक नाम *एसपैरेगस एडसेंडेंस* है, जो लिलीएसी परिवार का सदस्य है। यह एक कंदमूल वाली बहुवर्षीय, कंटकों वाली झाड़ीनुमा औषधीय पादप है। इसके सम्पूर्ण भाग पर मेंदा सतावर से छोटे–छोटे नुकीले मुड़े हुए कांटे होते हैं। पत्तियां पतली–पतली, सूच्चाकार, नुकीली पीलापन लिए हुए होती हैं, जो एक ही वृन्त पर लगी होती हैं।

ऋतुजैविकी

पीली सतावर वर्ष में दो बार फूलती–फलती है। एक बार जुलाई–अगस्त माह में और दुबारा सितम्बर–अक्टूबर माह में फिर से सफेद गुच्छों में फूल आते हैं और फल लगते हैं। फल गोल हरे रंग के होते हैं जो पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। यह बाद में काले रंग के हो जाते हैं, इन्ही के अन्दर गोल और काले, छोटे–छोटे रत्ती के आकार के एक–एक बीज होते हैं। शीत–काल में पके फल उच्चकोटि के होते हैं। (चित्र–1)

प्रसारण एवं संरक्षण :

सतावर का प्रसारण मुख्यतः प्राकृतिक रूप से बीजों के द्वारा ही होता है। अक्टूबर–नवम्बर माह में एकत्र किये गए बीजों को मई में किसी छायादार जगह पर धरती की सतह से लगभग 10 से.मी. की गहराई में बीजशैया तैयार कर उसके ऊपर बीजों की बुवाई कर के उस पर उसी खाद, बालू और मिट्टी के मिश्रण की 0.5 से.मी. की परत बिछाकर बीजों को ढक कर हल्के हाथों से दबा दिया जाता है। फिर उसको सूखी कांस/भरुही की परत बिछाकर बंद कर उसके ऊपर दो–तीन आड़ी–तिरछी हल्की मोटी लकड़ी से दबा दिया जाता है जिससे बीज शैया में पानी भरने से घास हटे नहीं। बीज शैया को पानी से लबालब भर दिया जाता है क्योंकि सतावर की बीजशैया को पानी भरकर पूरी तरह से तृप्त करना पड़ता है। इससे बीजों में नमी का अच्छी तरह से संचार होता है फिर हजारे से 24 घंटे में एक बार हल्की सिंचाई करना चाहिए। कांस की परत हटाकर देखते रहना चाहिए की अंकुरण हो रहा है की नहीं। इस प्रकार लगभग 25 दिनों में बीज अंकुरित होने लगते हैं। अंकुरित होने पर घास को तुरंत हटा देना चाहिए और आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए और जब पौधे एक माह के एवं उनकी ऊँचाई 8-9 से.मी. के हो जाएं तो उन्हें उखाड़कर खाद, बालू और मिट्टी से भरे पी.पी. बैग में लगा देना चाहिए। पी.पी. बैग में लगे पौधों की सिंचाई करते रहना चाहिए। जब पौधे 18–20 से.मी. लम्बाई के हो जाएं तो उन्हें पहले से तैयार उपयुक्त जल निकास वाली धरती पर 1x1 मी0 की दूरी पर पौधारोपण एवं परवरिश कर हम मानव–जाति के अस्तित्व के लिए पीली सतावर का प्रसारण एवं संरक्षण करते हैं।

पीली सतावर से चूर्ण बनाने की विधि : सबसे पहले हम मई–जून के महीनों में पीली सतावर के पौधों को धरती से खोदकर उसमें लगी मिट्टी को पानी से धोकर साफ़ करते हैं।

चित्र संख्या–1 : A. पीली सतावर, B. पुष्पन अवस्था, C. फलन अवस्था, D. परिपक्व एवं अपरिपक्व फल, E. एकत्र परिपक्व फल, F. साफ किये बीज, G. बीजशैया पर बोये गए बीज, H. खाद की परत, I. कांस की परत, अंकुरित पौधे, J. स्थानांतरित पौधे पी.पी. बैग में, K. पौधारोपण, L. तैयार फसल।

फिर पौधों से पीली सतावर को अलग–अलग करके उसमें से स्वस्थ्य पीली सतावर को छटनी करते हैं। इस प्रकार अलग की हुई पीली सतावर को किसी देग या बड़े बर्तन में पानी भरकर उसमें स्वस्थ्य छटनी की हुई पीली सतावर को डालकर चूल्हे पर चढ़ा कर पकने देते हैं। बीच–बीच में पीली सतावर को निकालकर उसका छिलका निकालकर देखते हैं। यदि छिलका आसानी से निकल जाता है तो देग को उतारकर धरती पर रख देते हैं। छिलके के साथ–साथ उसके अन्दर एक धागा जैसा होता है उसको भी जल्दी–जल्दी निकाल कर फेंक देते हैं। इस साफ किए गए पीली सतावर को धूप या ओवन में सुखाते हैं। यह प्रक्रिया तब–तक करते हैं जब तक पीली सतावर चुरचुरी न हो जाए। चुरचुरी होने पर इस साफ़ की हुई पीली सतावर के छोटे–छोटे टुकड़े करके ग्राइंडर मशीन या घरेलू मिक्सी में पीस लेते हैं। इस प्रकार से पीली सतावर का चूर्ण बनकर तैयार हो जाता है। (चित्र संख्या–2)

सतावरी घृत बनाने की विधि :

सर्वप्रथम 4 किग्रा. सतावर की जड़ के गूदे को सिल पर पीसकर लुगदी बनाते हैं। इस लुगदी को कढ़ाही में डालकर इसमें 4 लीटर, गाय का घी और चालीस लीटर गाय का दूध डालकर चूल्हे पर चढ़ा कर मंदी–मंदी आग पर तब तक पकाते हैं जब तक घी मात्र शेष न रह जाए। जब घी मात्र रह जाय तो उतारकर छान कर किसी बर्तन में भरकर रख देते हैं। इस प्रकार सतावरी घृत तैयार होता है।

औषधीय उपयोग :

सतावर की जड़ों का उपयोग विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक, यूनानी एवं सिद्धा में औषधियाँ बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। हर दिन संध्या समय औटाये हुए गरम दूध में थोड़ी सी मिसरी और एक तोला सतावर की जड़ का चूर्ण मिलाकर पी सकते हैं।

1. सतावर का रस शहद मिलाकर पीने से पित्तज प्रदर रोग में आराम हो जाता है।
2. सतावर का चूर्ण फाँककर, ऊपर से दूध पीने से सोम रोग नष्ट हो जाता है।
3. सतावर दूध में पीसकर पीने से स्त्रियों में दूध बढ़ता है।
4. सतावर घृत एक तोला, छः माशा मिसरी, चार माशा शहद और दो रत्ती पिप्पली का चूर्ण मिलाकर चाटने से अम्ल पित्त, नष्ट होती है। इसके अलावा अन्य पित्त विकार नष्ट होते हैं।

चित्र संख्या–2 : A. उपरी भाग को काटकर अलग किया हुआ कंद, B. कंद से अलग की गयी जड़ें, C. छिलका एवं धागा निकालकर साफ़ की हुई सतावर, D. सूखी सतावर, E. तैयार पीली सतावर चूर्ण, F. चूर्ण शीशी में।

भारत के संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स एवं उनका संरक्षण

बालेश्वर एवं अजीत प्रताप सिंह
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

टेरिडोफाइट्स दो शब्द "टेरिडो" और "फाइटा" से मिलकर बना है, जिसका मतलब पंख जैसे दिखने वाले पौधे होते हैं। टेरिडोफाइट्स वनस्पति जगत के प्राचीनतम, संवहनीय, अपुष्पीय, स्वपोषी युग्मकोद्भिद् तथा संयुग्मकोद्भिद् प्रकार के पौधों का समूह है। ये जलीय, अध्युद्भिदीय, स्थलीय और प्रायः ठन्डे, नमयुक्त, छायादार स्थानों पर पाये जाते है। इनका वंशानुक्रम और पुनर्जनन बीजाणु द्वारा होता है। वयस्क पौधों का शरीर स्पोरोफाइट होता है जो प्रकंद तथा पर्ण में विभेदित होता है। कुछ पौधों में पत्तियां प्रायः बड़े आकार की होती हैं जिन्हें फर्न कहते हैं। जैसे– *टेरिस* प्रजाति, *पायरोसिआ* प्रजाति, *एडिएंटम* प्रजाति आदि। टेरिडोफाइट्स के कुछ पौधों में पत्तिया बहुत छोटी–छोटी जिह्वा के आकार की पायी जाती है जिन्हें फर्न–सहयोगी कहते है जैसे–*सिलाजिनेला, लायकोपोडियम, ह्यूपरजिआ* प्रजाति आदि। प्राचीनकाल में टेरिडोफाइट्स अधिकता में पाए जाते थे। बदलते जलवायु व परिस्थितियों के कारण बहुत टेरिडोफाइट्स की प्रजातियों की संख्या दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है। घटती संख्या के कारण अधिकाँश प्रजातियों के जीवन पर संकट मंडराने लगा है। अब ऐसी परिस्थितियाँ बनती जा रही हैं कि अधिकाँश प्रजातियाँ इस संकट के कारण विलुप्तता की कगार पर हैं या विलुप्त हो चुकी हैं अथवा निकट भविष्य में विलुप्तता के क्रम में शामिल हो सकती हैं। इनकी विलुप्तता व विद्यमत्ता के आधार पर टेरीडोफाइट्स को दो भागों में बांटा गया है।

(अ) विलुप्त टेरिडोफाइटस : जो सिर्फ जीवाश्म अभिलेखों से ज्ञात हैं जैसे– *रायनिया* प्रजाति (रायनियोफाइटा), *कुक्सोनिया* प्रजाति (जोस्टेरियोफिलोफाइटा), *होसटीनेला* प्रजाति (ट्राइमेरोफाइटा)।

(ब) जीवित टेरिडोफाइटस : जो प्रजातियाँ वर्तमान में विद्यमान हैं जैसे– *साइलोटम* प्रजाति (साइलोफाइटा), *सायथिआ* प्रजाति (फिलिसिनोफाइटा) आदि।

टेरिडोफाइट्स की उत्पत्ति :

इनकी उत्पत्ति सिलुरियन काल (443.7–416 मिलियन वर्ष पूर्व) तथा विकास डेवोनियन काल (416–359 मिलियन वर्ष पूर्व) में हुआ था। कालांतर में ये पुरा–पाषाण युग के कार्बोनिफेरस अवधि (360–300 मिलियन वर्ष पूर्व) में पृथ्वी के अधिकांश भाग पर वितरित थे, जिस कारण कार्बोनिफेरस अवधि को" टेरिडोफाइट्स का युग" कहा जाने लगा। निरंतर भगौलिक दशा में बदलाव तथा जलवायु परिवर्तन (कार्बन डाइआक्साइड, तापमान, प्रदूषण आदि का बढ़ना) के कारण इनके जीवन चक्र में बदलाव आए तथा इनकी संख्या कम होती चली गई। वर्तमान में विश्व से लगभग 12,000 प्रजातियाँ 360 जाति तथा भारत से लगभग 1260 प्रजातियाँ, 34 कुल, 144 जाति के अंतर्गत ज्ञात हैं। भारत में पायी जाने वाली ये प्रजातियाँ चार मुख्य समूहों जैसे–*साइलोफाइटा, लाइकोपोडोफाइटा, स्फेनोफाइटा, फिलिसिनोफाइटा* से सम्बंधित है ।

संकटग्रस्त प्रजातियाँ :

टेरिडोफाइट्स की वह प्रजातियाँ जिनका विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के प्रभावों द्वारा विलुप्त होने का भय निकट भविष्य में है उन्हें संकटग्रस्त प्रजाति कहते हैं। प्राकृतिक आवास में लगातार हो रहे ह्रास के कारण टेरिडोफाइट्स की प्रजातियों की संख्या में भारी कमी होती जा रही है, जिस कारण निकट भविष्य में इनके विलुप्त होने की सम्भावना दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। संकटग्रस्त प्रजातियों के आँकलन का कार्य आई.यू.सी.एन. (इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज) द्वारा समय–समय पर किया जाता है। आई.यू.सी.एन. संकटग्रस्त प्रजातियों की लाल सूची तैयार करती हैं जो इन प्रजातियों की वैश्विक संरक्षण की व्यापक दशा की सूची कहलाती है। इस प्रकार आई.यू.सी.एन. समय–समय पर हजारों प्रजातियों के विलुप्त होने के जोखिम का मूल्यांकन करने के लिए एक मात्रात्मक मापदंडो का उपयोग करती हैं। आई.यू.सी.एन. द्वारा प्रयोग में लाये गये यह मात्रात्मक मानक लगभग सभी प्रजातियों व भगौलिक प्रक्षेत्रों के लिए प्रासंगिक हैं। इस प्रकार आई.यू.सी.एन. में लाल सूची के श्रेणी का आकलन, प्रजातियों के विलुप्त होने के जोखिम को परिभाषित करता है। आई.यू.सी.एन. में लाल सूची में नौ श्रेणी क्रमशः NE (Not Evaluated) से EX (Extinct) तक विस्तरित है। इसी श्रेणी में गंभीर रूप से लुप्तप्राय (CR), लुप्तप्राय (EN) और कमजोर (VU) प्रजातियों को निकट भविष्य में विलुप्त होने का खतरा रहता है। इस प्रकार किसी दी हुई प्रजाति के विलुप्त जोखिम का निर्धारण करने के लिए आई.यू.सी.एन. पांच मात्रात्मक मापदंडो का उपयोग करती है जैसेः (i) जनसंख्या की दर में गिरावट (ii) भौगोलिक सीमा (iii) क्या प्रजातियों की पहले से कोई एक छोटी आबादी है? (iv) क्या प्रजाति बहुत छोटी है या प्रतिबंधित क्षेत्र में रहती है ? (v) क्या मात्रात्मक विश्लेषण का परिणाम जंगल में विलुप्त होने की उच्च संभावना को इंगित करती है? आदि।

भारत में टेरिडोफाइट्स की संकटग्रस्त प्रजातियाँः

भारत में टेरिडोफाइट्स की अधिकांश प्रजातियाँ पूर्वोत्तर राज्यों, हिमालयी क्षेत्र और पश्चिमी घाटों में वितरित हैं। ज्ञात 34 कुल, 144 जातियाँ और 1260 प्रजातियों में लगभग एक चौथाई प्रजातियाँ किसी न किसी रूप में लुप्तप्राय हैं। सघन पौध सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि कुछ प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं अथवा गंभीर रूप से विलुप्तप्राय हैं। कुछ प्रजातियाँ

लुप्तप्राय श्रेणी में हैं, जिनके ऊपर निकट भविष्य में संकट संभावित है। टेरिडोफाइट्स पौधों के संकटग्रस्त का विशेषणिक आँकलन चंद्रा व अन्य (2008) तथा फ्रेजर व अन्य (2011) ने किया था, जिसके आधार पर भारत में लगभग 337 प्रजातियों को संकटग्रस्त की श्रेणी में रखा गया है, जो निम्न सारणी संख्या–1 में सूचीबद्ध हैं।

सारणी संख्या 1 : भारत में पायी जाने वाली विभिन्न श्रेणी की संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स की प्रजातियाँ।

श्रेणी	प्रजातियों की सं.
गंभीर रूप से लुप्तप्राय (CR) प्रजातियाँ	95
विलुप्त प्रजातियाँ (EX)	12
जंगल में विलुप्त प्रजातियाँ (EW)	4
लुप्तप्राय (EN) प्रजातियाँ	116
कमजोर (VU) प्रजातियाँ	67
लगभग संकटग्रस्त प्रजातियाँ	43
कुल प्रजातियाँ	**337**

विश्व स्तर पर संकटग्रस्त प्रजातियाँ=74

संकटग्रस्त प्रजातियों का वितरण तथा स्थिति :

टेरिडोफाइट्स के संकटग्रस्त प्रजातियों का वितरण विश्व के विभिन्न महाद्वीपों जैसे–अमेरिका, यूरोप, एशिया, अफ्रीका आदि देशों के शीतोष्ण अथवा उत्तरीगोलार्द्ध में अधिकतम है। भारत में संकटग्रस्त प्रजातियों का वितरण अधिकांशतयः पूर्वोत्तर भारत, पश्चिमी घाट, हिमालय तथा कुछ पर्वतीय क्षेत्रों जैसे–विंध्य, सतपुड़ा, अरावली क्षेत्र तक फैला हुआ है। पूर्वोतर भारत के विभिन्न राज्यों (अरुणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा), पूर्वी हिमालय क्षेत्र (सिक्किम, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग), पश्चिम हिमालय (कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड) तथा पश्चिमी घाट (केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु) में टेरिडोफाइट्स की विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत में पाए जानी वाली कुछ महत्वपूर्ण संकटग्रस्त प्रजातियों का वितरण सारणी संख्या–2 में दर्शाया गया है।

सारणी संख्या 2 : भारत में पाए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण संकटग्रस्त प्रजातियों का वितरण तथा उनकी संरक्षण दशा।

क्र.	प्रजाति का नाम	भारत में वितरण	संरक्षण दशा
1	*लाइकोपोडियम डेंड्रोइडम* मिचक्स.	पूर्वोत्तर भारत (अरुणाचल प्रदेश)	लुप्तप्राय (CR)
2	*एसप्लीनियम एक्सीगुअम* बेड.	तमिलनाडुः नीलगिरि	लगभग संकटग्रस्त
3	*एसप्लीनियम खासिएनम* स्लेद्ज	पूर्वी आंध्र प्रदेश; मेघालयः खासी हिल्स	लगभग संकटग्रस्त
4	*एसप्लीनियम रिवुलेअर* फ्रेज–जेंकि.	डेक्कन पेनिनसुला	लगभग संकटग्रस्त
5	*एथीरियम कुमाउनिकम* पुनेठा	उत्तराखंडः नैनीताल, पिथौरागढ़	लगभग संकटग्रस्त
6	*एथीरियम पारसनाथेंसे* (क्लार्क) चिंग *एक्स* बीर	राजस्थानः अरावली रेंज, दक्षिणी प्रायद्वीप, सेंट्रल हाईलैंड	लगभग संकटग्रस्त
7	*सायथिआ कृनिटा* (हूक.) कोपल.	केरल	संकटग्रस्त
8	*सायथिआ खासयाना* (मूरे. *एक्स* कुहन) डोमिन	मेघालय (खासी हिल्स); असम; पश्चिम बंगालः दार्जिलिंग	संकटग्रस्त
9	*सायथिआ जाइगैन्शिया* (वाल. *एक्स* हूक.) होल्ट्	सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, ओडिशा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, केरल	संकटग्रस्त
10	*सायथिआ स्पाइनुलोसा* वाल. *एक्स* हूक.	मध्यप्रदेश	संकटग्रस्त
11	*सायथिआ नीलगिरेंसिस* हॉल्ट.	कर्नाटकः कूर्ग, हस्सन, कोडागु; तमिलनाडुः नीलगिरि, अन्नामलाई, पाल्नी, शेव्रो हिल्स	विलुप्त
12	*सायथिआ एल्बोसेटेसिया* (बेड.) कोपेल.	निकोबार आइलैंडः कमोर्टा, कोटछाल	कमजोर प्रजाति
13	*सायथिआ निकोबारिका* बालकर *एट* दीक्षित	निकोबार आइलैंड	लुप्तप्राय (CR) या विलुप्त
14	*ऐडीयंटम फ्लैबलूलेटम* एल.	मेघालय, असम	कमजोर (VU)
15	*सायथिया कान्तामिनान्स* (मूरे *एक्स* हूक.) कोपल	पश्चिम बंगालः दार्जिलिंग (रंगबी वैली)	लुप्तप्राय (CR) या विलुप्त
16	*लाइगोडियम पोलिस्टैकियम* वॉल *एक्स* टी. मूर	असम, मणिपुर	संकटग्रस्त
17	*साइजिआ डिजिटाटा* (एल) स्वो	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	संकटग्रस्त

संकट ग्रस्त होने के प्रमुख कारण :

टेरिडोफाइट्स प्रायः नम, छायादार, ठन्डे स्थानों, कम तापमान और प्रकाश तीव्रता, वायुमण्डलीय आर्द्रता, जैविक कम्पोस्ट तथा अधिक उर्वरकयुक्त मिट्टी अथवा पौधों की शाखाओं पर अधिकता में उगते हैं। प्राचीनकाल की अपेक्षा वर्तमान युग में इन पौधों की संख्या लगातार घटती जा रही हैं। जिसके कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं।

(अ) वनों की कटाई : वनों की लगातार कटाई से वन–सम्पदा का घनत्व कम होता जा रहा है, जिस कारण वातावरण की सूक्ष्म जलवायु में परिवर्तन (वातावरणीय नमी में कमी, ग्रीष्म ऋतु में तापमान अधिक होना आदि), इस प्रकार के पौधों के लिए उपयुक्त नहीं है।

(ब) चट्टानों का क्षरण : शीत, ग्रीष्म व वर्षा ऋतु के कारण चट्टानों की ऊपरी सतह का लगातार क्षरण होता रहता है, जिस कारण चट्टानों के सतह पर उगने वाली प्रजातियाँ अपने प्राकृतिक स्थान से समाप्त हो जाती हैं।

(स) आर्थिक उपयोग हेतु अधिक दोहन : आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधों का आम जनमानस द्वारा अत्यधिक दोहन कर लिया जाता है, जिससे ये पौधे अपने प्राकृतिक स्थान से दिन–प्रतिदिन खत्म होते जा रहे हैं।

(द) पर्यटन एवं स्थानीय शहरीकरण : पर्यटक एवं स्थानीय क्षेत्रों के लोगों द्वारा इन महत्त्वपूर्ण पौधों को सजावट, भोजन, चारे तथा औषधीय रूप में अत्यधिक उपयोग करना तथा इनके प्राकृतिक स्थानों पर बढ़ते पर्यटन व शहरीकरण के कारण ये अपने मूल स्थान से विलुप्त होते जा रहे हैं।

(य) मानव जनित गतिविधि : मानव जनित गतिविधि जैसे–खनन आदि द्वारा इनके प्राकृतिक आवास को मिटाया जा रहा है। इसी तरह *एंजियोप्टेरिस* तथा *सायथिआ* प्रजाति का बहुतायत में उपयोग आर्किड कल्टीवेशन में किया जाता है, जिस कारण इन दोनों महत्वपूर्ण प्रजातियों का दोहन इनके मूल स्थान से भारी मात्रा में हो रहा है और ये विलुप्तता के कगार पर पहुँच रही हैं।

(र) मूल प्रजातिओ का पुनःरोपण ना करना : अन्य पौध प्रजातियों की तरह टेरिडोफाइट्स की मूल प्रजातियों का पुनःरोपण ना करने के कारण इन महत्वपूर्ण प्रजातियों की संख्या दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है।

संकटग्रस्त आकलन करने की विधि :

टेरिडोफाइट्स प्रजातियों की संकटग्रस्त आँकलन निम्नलिखित तरह से किया जा सकता हैः–

(अ) हर्बेरिया द्वारा : हर्बेरिया में संग्रह की गयी सूचनाओं की विस्तृत समीक्षा कर प्रजातियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे– उनका वर्तमान वितरण एवं उनके पूर्व वितरण, जनसंख्या सिकुड़ने की प्रवृत्तियों के साथ–साथ उनकी स्थिति के आकलन में हर्बेरिया का बहुत ही महत्वपूर्ण उपयोग है।

(ब) साहित्य की समीक्षा द्वारा : फ्लोरा, चेकलिस्ट, मोनोग्राफ और टैक्सोनोमिक खाते की सहायता से प्रजातियों की पूर्व में वितरण की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी सहायता से वर्तमान संरक्षण दशा का तुलनात्मक अध्ययन कर संकटग्रस्तता का आकलन कर सकते हैं।

(स) पौध सर्वेक्षण व गणना विधि द्वारा : इस विधि में पौध सर्वेक्षण व गणना के लिए एक क्षेत्र निर्धारित किया जाता है, जहाँ पर पौधों की वर्तमान संरक्षण दशा का निर्धारण किया जाना है। निर्धारित क्षेत्र में बारम्बार पौधे सर्वेक्षण करते हुए प्रति इकाई क्षेत्रफल का परिमाप डाला जाता है। इस परिमाप के अंतर्गत आने वाले समस्त प्रजातियों के नमूनों का संकलन के साथ–साथ प्रत्येक प्रजाति की संख्या की गणना भी की जाती है। इन गणनात्मक संख्याओं को विभिन्न पारिस्थितिक सूचकांकों की सहायता से प्रत्येक प्रजाति की सरंक्षण दशा का निर्धारण किया जा सकता है।

टेरिडोफाइट्स संरक्षण करने के मुख्य कारण :

टेरिडोफाइट्स आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये पारिस्थितिक तंत्र में विशेष सेवा प्रदान करते हैं, जिस कारण पारिस्थितिक तंत्र मजबूत, स्थायी और निरंतर बना रहता है। इसके अतिरिक्त ये औषधि, भोजन, जैविक यौगिक, रासायनिक पदार्थ, जीन आदि के लिए निम्नलिखित रूप से महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

(अ) औषधीय उपयोग : *लाइकोपोडियम क्लेवेटम* से प्रसिद्ध होमियोपैथिक औषधि लाइकोपोडियम निकाली जाती है जो वृक्क, यकृत व फेफड़े के रोगों व बुखार में उपयोगी है। यह वृद्धावस्था रोगों में भी उपयोगी है। *इक्विसीटम डेबाइल* स्त्री जननांगों के रोगों के उपचार में उपयोगी है। *एन्जियोप्टेरिस* का उपयोग रेबीज (कुत्ते के काटने के उपचार) में किया जाता है। *ऑस्मुंडा रीगैलिस* में कैल्शियम की प्रचुरता होने के कारण कमजोर हड्डियों में लाभदायक है।

(ब) सजावटी पादप : इनका उपयोग उद्यानों में सजावटी पौधों के रूप में किया जाता है जैसे– *टेरिस, नेफ्रोलेपिस, एडियन्टम, टेरिडियम* प्रजाति आदि। वृक्ष फर्न जैसे– *सायथिआ, एलसोफिला* भी उद्यानों में सजावटी पौधों के रूप में उगाये जाते हैं।

(स) उर्वरक के रूप में : *ऐजोला* प्रजाति में सायनोबैक्टीरिया *एनाबेना* सहजीव के रूप में रहता है। यह नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है, इस कारण धान के खेतों में *ऐजोला* डाला जाता है। *ऐजोला* की राख में अधिक पोटैशियम होने के कारण इसका उपयोग कृषि में होता है। *इक्वीसीटम* की राख में सिलिका अधिक होता है जिससे इसका उपयोग जेवर, पीतल की वस्तुओं को चमकाने में किया जाता है। *साल्वीनिआ* तथा *ऐजोला* जल में तीव्रता से फैलते हैं, जिसका जल–जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। *टेरिडियम* मृदा में कुछ ऐसे

रसायन छोड़ता है जिससे अन्य पौधों के बीजों का अंकुरण व वृद्धि रुक जाती है। इसलिए ऐसी प्रजातियों का उपयोग एलीलौपैथी के रूप में कर सकते है। इन पौधों का पुराजीवी काल से आज तक विभिन्न परिस्थितियों (सूखा, ठण्ड, बरसात, अम्लीय, जैविक, अजैविक) में अनुकूलता इनकी सक्रिय संभावित क्षमताओं को परिलक्षित करती है। इनकी सक्रियता और क्षमता के कारण ये बहुआयामी रूप से महत्वपूर्ण हैं, जिस कारण टेरिडोफाइट्स वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास कार्यों में मुख्य भूमिका निभाने की क्षमता रखते हैं। भविष्य में इनका उपयोग औषधीय विकास, नवीन यौगिक, सुगंध कारक, वैकल्पिक भोजन, प्रदूषण सूचक के आधार पर फसलों का विकास, फसलों की उत्पादकता, फसलों की प्रतिरोधी क्षमता, कीड़े–मकोड़े के निरोधन, उर्वरक, गृहसज्जा एवं बहुआयामी महत्ता के कारण इनका संरक्षण महत्वपूर्ण है।

संकटग्रस्त पौधों के संरक्षण के उपाय :

उपयुक्त कारणों से पता चलता है कि टेरिडोफाइट्स प्रकृति तथा समाज में अद्भुत स्थान रखते हैं, अतः इनका संरक्षण महत्वपूर्ण है। इनका संरक्षण दो महत्वपूर्ण विधि से किया जा सकता है।

(1) स्वस्थानी संरक्षण : इस प्रकार के संरक्षण के अंतर्गत टेरिडोफाइट्स को उनके प्राकृतिक वास स्थान अथवा सुरक्षित क्षेत्रों में संरक्षित किया जाता है। संरक्षित क्षेत्र, भूमि या समुद्र के वे क्षेत्र होते हैं जो संरक्षण के लिये समर्पित हैं तथा जैव विविधता को बनाए रखते हैं। संरक्षण की इस विधि के तहत जैव संवेदी क्षेत्र, राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य, जीवमंडल रिजर्व आदि की स्थापना की जाती है।

(अ) जैव संवेदी क्षेत्र : वे क्षेत्र हैं जिनमें जैव विविधता स्पष्ट रूप से मिलती है। इस स्थान को मानव द्वारा अधिक हानि नहीं पहुँचायी जाती हैं। ये स्थान धरोहर के रूप में संरक्षित किये जाते हैं, जिससे दुर्लभ प्रजातियों को भी बचाकर रखा जा सके तथा प्राकृतिक पर्यावरण में उन्हें उगाया जा सके। नार्मन मेयर (1988) ने हॉट स्पॉट संकल्पना विकसित की थी, जिससे उन स्थानों का पता लगाया जाय जहाँ पर स्वस्थानी संरक्षण किया जा सके। हॉट स्पॉट धरती पर पादप व जन्तु के जीवन में दुर्लभ प्रजातियों का सबसे बड़ा भण्डार होता है, जैसे–पश्चिमी घाट व पूर्वी हिमालय क्षेत्र।

(ब) राष्ट्रीय उद्यान : यह वह क्षेत्र होता है जहाँ पर प्राकृतिक वनस्पतियों को उनके प्राकृतिक क्षेत्र में ही सुरक्षित रखा जा सकता है। राष्ट्रीय उद्यान में वनस्पतियों को उनके प्राकृतिक स्वभाव व आदतों से सम्बन्धित प्रभावी कारकों को उपलब्ध कराकर प्राकृतिक वास में संरक्षित किया जाता है। उदाहरणस्वरुप दुधवा राष्ट्रीय उद्यान में जन्तुओं के साथ टेरिडोफाइट्स के पौधे *ओफियोग्लासम, ड्रायोप्टेरिस* तथा *माइक्रोलेपिआ* प्रजाति आदि स्वतः संरक्षित हैं।

(स) जीवमंडल रिजर्व : जैवमण्डल रिजर्व वह संरक्षित क्षेत्र है जिसमें 'आबादी' तन्त्र की अल्पता होती है। ये प्राकृतिक जीवोम हैं जहाँ के जैविक समुदाय विशिष्ट होते हैं। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संघ के मानव व जैवमण्डल कार्यक्रम में 1975 में जैवमण्डल रिजर्व के सिद्धान्त को रखा गया जिसके अन्तर्गत पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण आनुवांशिक स्रोतों के संरक्षण से किया जाना सुझाया गया। भारत में कुल 18 जैवमण्डल रिजर्व ज्ञात हैं। जैवमण्डल रिजर्व के अन्तर्गत कोर, बफर तथा उदासीन क्षेत्र आते हैं। प्राकृतिक अथवा कोर क्षेत्र का पारितन्त्र पूर्ण तथा कानूनी रूप से संरक्षित होता है। बफर क्षेत्र कोर क्षेत्र को घेरता है तथा इसमें विभिन्न प्रकार के टेरिडोफाइट्स व अन्य पौधों के स्रोत मिलते हैं जिन पर शैक्षिक व शोध गतिविधियाँ चलती रहती हैं। इस प्रकार जैवमण्डल रिजर्व, संकटग्रस्त पौधों के संरक्षण, विकास तथा उनसे संबंधित अनुसंधान कार्य निम्न तरह से संचालित करते हैं। (i) संरक्षणः अनुवांशिक स्रोतों, जातियों, पारितन्त्र आदि का संरक्षण करना (ii) विकासः सांस्कृतिक, सामाजिक तथा पारिस्थितिकीय स्रोतों का विकास (iii) वैज्ञानिक शोध तथा शैक्षणिक उपयोगः संरक्षण सम्बन्धी इन क्रियाओं से वैज्ञानिक शोध व सूचना का राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय होता है। भारत में 18 जीव आरक्षित क्षेत्र (बायोस्फियर रिजर्व) सीमांकित किये गये हैं। इन जीव आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना का उद्देश्य पौधों, जीव–जन्तुओं तथा सूक्ष्म जीवों की विविधता एवं एकता को बनाये रखना तथा पर्यावरण सम्बन्धी अनुसन्धानों को प्रोत्साहन देना है।

(2) गैर–स्थानिक संरक्षण : इस संरक्षण विधि में टेरिडोफाइट्स प्रजातियों का मूल वातावरण से अलग स्थान पर पूर्ण नियंत्रित स्थितियों में संरक्षण किया जाता है। टेरिडोफाइट्स संकटग्रस्त पौधों का गैर–स्थानिक संरक्षण निम्न विधियों से किया जा सकता है।

(अ) ऊतक संवर्धन विधि द्वारा : पौधे के बढ़ते हुए ऊपरी हिस्से से ऊतकों का एक छोटा टुकड़ा लिया जाता है। इस टुकड़े को एक जैली में (जिसमें पोषक तत्व और प्लांट हार्मोन होते हैं) रखा जाता है। ये पोषक तत्व व हार्मोन पौधे के ऊतकों में कोशिकाओं को तेजी से विभाजित करते हैं और इनसे कई कोशिकाओं का निर्माण होता हैं। इन सभी कोशिकाओं को एक साथ एक ही जगह पर इकट्ठा किया जाता है जिसे कैलस भी कहा जाता हैं। कैलस को भी एक अलग जगह जैली में स्थानांतरित किया जाता है इससे पोषक तत्व व प्लांट हार्मोन कैलस को पौधे की जड़ों में विकसित करने के लिए उत्तेजित करते हैं। कैलस में जब जड़ें विकसित हो जाएं तो उसे एक और जैली में स्थानांतरित किया जाता है जहाँ कई पोषक तत्व व हार्मोन होते हैं। इन्हीं पोषक तत्वों व हार्मोन की वजह से ही पौधों के तने को विकास मिलता हैं। कैलस को जड़ और तने के साथ ही एक छोटे पौधे के रूप में अलग कर दिया जाता हैं।

बाद में इस तरह के बाकी पौधों को भी मिट्टी में प्रत्यारोपित किया जाता है तथा कठोरीकरण व अनुकूलन के पश्चात उपयुक्त स्थान पर संरक्षित किया जाता है।

(ब) डीएनए बैंक विधि द्वारा : इस प्रणाली में जीन संरक्षण के लिए टेरिडोफाइट्स के पौधे को रोपा जाता है। इस उद्देश्य के लिए कृत्रिम पारितंत्र बनाया जाता है। इस प्रणाली से पौधे के अलग–अलग प्रजातियों में असमानता की तुलना और विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रणाली से, महत्वपूर्ण टेरिडोफाइट्स के जनन द्रव (जर्म प्लाज्म) को संरक्षित किया जाता है।

(स) पौधों का गुणन– इस विधि में निम्नलिखित लैंगिक और वानस्पतिक भागों का उपयोग कर पौधों की संख्या बढ़ाई जाती है।

(i) लैंगिक विधि द्वारा : प्रजनन की इस विधि में टेरिडोफाइट्स पौधों के बीजाणुओं का संकलन कर सोडियम हाइपोक्लोराइट द्वारा सतहीय विसंक्रमणित करने के बाद उपयुक्त कल्चर मीडिया (पी व टी मीडिया) तथा प्रयोगशाला परिस्थिति (उपयुक्त प्रकाश, आर्द्रता, तापमान) में बुआई करते हैं। कुछ समय अंतराल पर बीजाणुओं में अंकुरण के पश्चात युग्मकोद्भिद् पैदा हो जाते हैं। इन युग्मकोद्भिद् पर युग्मक के पैदा होने पर इन युग्मकों को संयुग्मन के लिए छोड़ दिया जाता है। संयुग्मन के बाद दो–तीन सप्ताह के अंतराल पर नया संयुग्मकोद्भिद् पौधे अधिक संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं। इन पौधों का कठोरीकरण कर अनुकुलन के लिए पौधघर में विस्थापित कर दिया जाता है। कुछ समय पश्चात इन पौधों को सम्बंधित स्थान पर संरक्षित किया जा सकता है।

(ii) वानस्पतिक विधि द्वारा : इस विधि में विशेष वनस्पति भागों जैसे–कलिका, पत्र प्रकलिकाओं, प्रोलिफेरस पर्णाग्र, एरियल ग्रोथ, स्टोलन और कंद, ऑफसेट, स्टिप्यूल और रूट बड्स आदि का प्रसार शामिल है। इन विधियों में अधिक समय लगता है और ये अपेक्षाकृत धीमी होती हैं। संवहनीय अपुष्पीय पादपों विशेष रूप से ऊतक संवर्धन के लिए अनुकूल हैं क्योंकि इनकी संवहनीय प्रणाली अत्यधिक विभेदित होती है जो *इन–विट्रो* में वृद्धि करने में सक्षम होती है। भारत में *इन–विट्रो* दिशा में टेरिडोफाइट्स का बहुलीकरण उनके विभिन्न भागों का उपयोग करके किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण टेरिडोफाइट्स और बहुलीकरण के लिए प्रयोग में लाये गये ऊतकों का विवरण सारणी संख्या 3 में वर्णित है।

सारणी संख्या 3 : संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स का बहुलीकरण के लिए प्रयोग किये गये ऊतकीय भाग।

क्र. सं.	प्रजाति का नाम	ऊतकीय भाग	क्र. सं.	प्रजाति का नाम	ऊतकीय भाग
1	*ब्लेकनम स्पाईकैन्ट*	प्रकंद	6	*सायथिआ कृनिटा*	बीजाणु
2	*टेरिस इन्सीफोर्मिस*	प्रकंद	7	*सायथिआ खासयाना*	बीजाणु
3	*एसप्लीनियम नूडस*	प्रकंद	8	*सायथिआ कंटामिनेन्स*	बीजाणु
4	*ड्रिनेरिया क्वेर्सीफोलिआ*	प्रकंद	9	*सायथिआ जाइगैन्शिया*	बीजाणु
5	*ऑस्मुंडा रीगैलिस*	युग्मकोद्भिद	10	*सायथिआ स्पाईनुलोसा*	बीजाणु
			11	*एडियंटम फ्लैब्लूलेटम*	बीजाणु

निष्कर्ष एवं भविष्य की सम्भावना : उपरोक्त विवरणों से पता चलता है कि टेरिडोफाइट्स की संख्या दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है जिसका प्रमुख कारण प्रकृति और मानव निर्मित कारक है। इनकी संख्या में लगातार हो रही कमी को रोकने के लिए निश्चित कदम उठाने की आवश्यकता है जिससे इनके संरक्षण और सतत प्रबंधन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इसके लिए हमें कुछ प्रमुख उद्देश्यों पर विचार करने की नितान्त आवश्यकता है। जिसमे संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स की वर्गीकरण और स्थिति का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए एक व्यापक विश्लेषण की अतिशीघ्र आवश्यकता है। इन संकटग्रस्त प्रजातियों की आबादी का भी नियमित रूप से पुनर्निरीक्षण एवं अवलोकन करते रहना आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में संकटग्रस्त टेरिडोफाइट्स की अधिकता हो ऐसे क्षेत्रों को संरक्षित क्षेत्र घोषित कर इन पौधों को मूल प्राकृतिक आवास तथा स्वभाव उपलब्ध कराकर संरक्षण को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। देश के विभिन्न फर्न हाउस व वानस्पतिक उद्यानों में गैर–स्थानिक संरक्षण कर संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण को बढ़ावा देना चाहिए। साथ–साथ ऐसे संकटग्रस्त प्रजातियों के सूक्ष्म जलवायु, पारिस्थितिकी तंत्र, पुनर्जनन क्षमता, पारिस्थितिक भविष्यवाणी और प्रजनन क्षमता, व्यवहार तथा *इन–विट्रो* गुणन की पहचान व सत्यापन करने पर विशेष जोर देने की आवश्यकता है। वर्तमान में टेरिडोफाइट्स व इनकी संकटग्रस्त प्रजातियों का अस्तित्व बचाए रखने के लिए समाज में इनके संरक्षण और महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करना तथा इनके व्यापक और टिकाऊ उपयोग द्वारा आजीविका के साथ–साथ मानव समाज को जोड़ने पर ज्यादा बल देने की जरुरत है। जिससे संकटग्रस्त प्रजातियों के आर्थिक और सतत संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सके।

हमारा पारम्परिक उपेक्षित अनाज समूह : मिलेट्स

शुभम जायसवाल, दिलेश्वर प्रसाद, वीरेंद्र के. मधुकर एवं प्रियंका अग्निहोत्री
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

मनुष्य और शाकाहारी पशुओं के लिए अनाज भोजन का एक प्रमुख स्रोत है। सभी अनाज, घास परिवार पोयसी के सदस्य हैं। इस परिवार के पौधों में एक विशेष प्रकार के फल पाये जाते हैं, जिन्हें कैरियोप्सिस कहा जाता है। अतः जिन पौधों में कैरियोप्सिस पाया जाता है। उन्हें अनाज या ग्रेन की श्रेणी में रखा गया है। हमारे देश में मुख्य अनाज फसलों के अंतर्गत जौ, मक्का, जई, धान, राई और गेहूँ की बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। अनाज समूह के अंतर्गत ही कुछ ऐसी फसलें भी आती हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से मिलेट कहते हैं। मिलेट समूह के अंतर्गत 8 मुख्य छोटे बीज वाली फसलें क्रमशः सोरघम (ज्वार), पर्ल मिलेट (बाजरा), प्रोसो मिलेट, लिटिल मिलेट (कुटकी), कोदो मिलेट, बार्नयार्ड मिलेट (झंगोरा), फाक्सटेल मिलेट (कंगनी) और फिंगर मिलेट (रागी) शामिल हैं। ये वैसे तो अन्य अनाज के पौधों की तरह ही होते हैं, लेकिन इनमें पाये जाने वाला बीज या ग्रेन या कैरियोप्सिस अन्य सामान्य अनाजों की तुलना में छोटा होता है। पोषण के स्तर पर भी ये अन्य सामान्य अनाजों की तुलना में बहुत भिन्न हैं। इनमें कार्बोहाइड्रेट अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाया जाता है। वहीं अन्य पोषक तत्व जैसे प्रोटीन तथा खनिज की मात्रा कहीं अधिक होती है। सम्पूर्ण विश्व में मिलेट्स को अनाज तथा पशु चारे के लिए उगाया जाता है। मिलेट्स अपने अद्भुत गुणों और पोषण मूल्यों के कारण लोकप्रिय हैं।

मिलेट्स का इतिहास बहुत प्राचीन है। कोरिया पेनिनसुला डेटिंग के फलस्वरूप लगभग 3500–2000 ई.पू. मध्य जयलमन पॉटरी काल में मिलेट्स की खेती के प्रमाण मिले हैं। मिलेट्स का वर्णन आयुर्वेद में भी मिलता है। आयुर्वेद में कंगनी (प्रियंगवा), झंगोरा (आनवा) तथा रागी (श्यामका) के गुणों का वर्णन है। इससे यह इंगित होता है कि प्राचीन समय से ही भारत में मिलेट्स का उपभोग होता आ रहा है और हम इनके पोषक एवं औषधीय गुणों से भली–भांति परिचित थे। भारतीय कांस्य युग की प्री–डेटिंग के फलस्वरूप यह प्रमाणित हुआ है कि भारत में मिलेट की खेती लगभग 4500 ई.पू. से होती आ रही है। लगभग 50 वर्ष पूर्व तक मिलेट्स भारत का प्रमुख आहार थे।

प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियों में भी इसके फसल की पैदावार अच्छी होती है। मिलेट्स कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन है जो कि बंजर भूमि में रहने वाले किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कराते हैं। अत्यधिक तीव्र परिपक्वन और सभी वातावरणीय दशाओं के प्रति अनुकूल होने के कारण इनको अन्य, देरी से परिपक्व होने वाली फसलों के साथ कैच या रिले क्रॉप के रूप में भी उगाया जा सकता है। मिलेट्स की उपज के लिए बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है। अतः असिंचित भूमि या कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी इन्हें आसानी से उगाया जा सकता है। एकल फसल जैसे धान और गेहूँ यद्यपि खाद्य सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं लेकिन इनकी खेती में अधिक लागत आती है। जबकि मिलेट्स कम लागत में ही हमको सम्पूर्ण खाद्य सुरक्षा (भोजन, चारा, पोषण और स्वास्थ्य) प्रदान करने में सक्षम हैं।

सम्पूर्ण विश्व में वर्ष 2014 में 30.73 मिलियन टन मिलेट का उत्पादन हुआ, जिसमें से 11.42 मिलियन टन का उत्पादन सिर्फ भारत में हुआ। जो विश्व के कुल मिलेट उत्पादन का 37. 5 प्रतिशत है।

अधिकतर मिलेट्स आसानी से सुपाच्य, ग्लूटेन रहित, अम्लरहित तथा उच्च पोषक मूल्य वाले होते हैं। इनको अपने उच्च पोषक मूल्यों के कारण 'न्यूट्रा–मिलेट्स' या न्यूट्रा–सीरियल्स भी कहते हैं। ग्लूटेन रहित होने के कारण सेलिएक रोग से पीड़ित लोग अपने आहार में विभिन्न मिलेट्स को आसानी से शामिल कर सकते हैं। मिलेट्स के अंतर्ग्रहण से ग्लूकोस रक्त में धीरे–धीरे मुक्त होता है। इस प्रकार ग्लिसेमिक इंडेक्स निम्न बना रहता है, जो कि मधुमेह की सम्भावनाओं को काफी कम कर देता है। इसके अतिरिक्त मिलेट्स कैल्सियम, आयरन, फॉस्फोरस, जिंक एवं पोटेशियम आदि के प्रमुख स्रोत हैं। रागी जहां कैल्शियम से भरपूर होता है, वहीं बाजरा में लौह की मात्रा सर्वाधिक होती है। इसके अतिरिक्त मिलेट्स में फाइबर और विटामिन्स जैसे कि बीटा कैरोटीन, विटामिन बी 6 और फोलिक एसिड की एक संतुलित मात्रा पायी जाती है। लेसिथिन भी उच्च मात्रा में पाया जाता है, जो कि तंत्रिका तंत्र के लिए आवश्यक होता है। अतः मिलेट्स को नियमित रूप से लेने से हम कुपोषण की समस्या से मुक्त हो सकते हैं। सभी जरूरी पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा होने के बावजूद भी हमारे देश में मिलेट्स का उपभोग बहुत कम केवल कुछ पारम्परिक लोगों, विशेष रूप से आदिवासी समाज तक ही सीमित है। भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख मिलेट फसलों का विस्तृत वर्णन यहाँ किया गया है–

1–सोरघम (ज्वार)

वानस्पतिक नाम – *सोरघम बाइकोलर*

सामान्य नाम – ज्वार

सोरघम (ज्वार) एक महत्वपूर्ण उष्णकटिबंधीय मिलेट है जो देश के अधिकतर शुष्क वर्षा वाले पारिस्थितिक तंत्रों में भोजन और चारे के लिए उगाया जाता है। वर्षा आधारित कम लागत की कृषि के लिए इसकी उच्च अनुकूलनशीलता और उपयुक्तता के कारण यह अर्ध–शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण अनाज और चारे की फसल है। भारत में गेहूं, चावल, मक्का और जौ के बाद ज्वार सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। ज्वार प्रकृति में बारहमासी होता है और एक

सघन गुच्छे में बीजों को धारण करता है। ज्वार का पोषण मूल्य मकई के समान है और यही कारण है कि यह पशु आहार के रूप में काफी प्रयोग किया जाता है। ज्वार का उपयोग इथेनॉल उत्पादन के लिए भी किया जाता है। इसके अलावा स्टार्च उत्पादन और कागज के उत्पादन में भी ज्वार का उपयोग होता है।

ज्वार की उत्पत्ति पूर्वोत्तर अफ्रीका में हुई थी। ये क्षेत्र जंगली प्रजातियों की विविधता और बहुतायत के साथ–साथ ज्वार की आदिम जाति का प्रतिनिधित्व करता है। सोरघम की उत्पत्ति का द्वितीयक केंद्र भारतीय उप–महाद्वीप है।

ज्वार, यूरोप के ठण्डे पूर्वी भाग को छोड़कर दुनिया के सभी भागों में उगाया जाता है। भारत में मुख्य रूप से केंद्रीय प्रायद्वीपीय भारत जैसे कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु और गुजरात महत्वपूर्ण राज्य हैं जहां पर ज्वार की खेती की जाती है।

ज्वार एक स्थायी कृषि मॉडल में बहुत अच्छी तरह से फिट बैठता है जिसमें पानी की सीमित स्थितियों में जीवित रहने की क्षमता होती है। अतः यह सीमांत किसानों के लिए एक विकल्प प्रदान करता है। इसके लिए सामान्यतः गर्म परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। यह समशीतोष्ण क्षेत्रों में और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में 2300 मीटर तक की ऊंचाई पर भी उगाया जाता है। यह किसी भी अन्य फसल की तुलना में अपने जीवन चक्र में उच्च तापमान को कुशलता से सहन कर सकता है। अच्छी वृद्धि के लिए ज्वार को 26–30 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। इसकी कई किस्में हैं। जैसे– सी एस एच 14, सी एस एच 9, सी एस एच 16, सी एस एच 185, सी एस वी 13

2. पर्ल मिलेट (बाजरा)

वानस्पतिक नाम – *पेन्नीसेटम ग्लाउकुम*

सामान्य नाम– पर्ल मिलेट (अंग्रेजी)

पर्ल मिलेट संभवतः 3000 वर्ष पूर्व पश्चिमी उष्णकटिबंधीय अफ्रीका से उत्पन्न हुआ था अैर वहां से अफ्रीका और दक्षिण एशिया में फैल गया। बाजरा एक मोटे अनाज वाली फसल है और इसे गरीब लोगों का मुख्य पौष्टिक भोजन माना जाता है। यह शुष्क भूमि में खेती करने के लिए उपयुक्त है। भारत में बाजरा, चावल, गेहूँ और मक्का के बाद चौथी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। यद्यपि अनाज के रूप में बाजरे का उपयोग मुख्य रूप से मानव खाद्य फसल के रूप में किया जाता है, लेकिन साथ ही साथ इसका उपयोग पशु आहार के लिए भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त सिलेज, निर्माण सामग्री के रूप में और ईंधन के स्रोत के रूप में बाजरा का उपयोग किया जाता है।

कायिक अवस्था में बाजरा का चारा अत्यधिक सुपाच्य होता है और यह हाइड्रोसिनेनिक एसिड का उत्पादन नहीं करता है। बाजरा में तेल और प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होती है। इसमें एमिनो अम्ल संतुलित मात्रा में होते हैं (एस–युक्त एमिनो एसिड को छोड़कर)। बाजरे में कैल्सियम और लौह की भी प्रचुर मात्रा होती है तथा इसमें टैनिन की मात्रा नगण्य होती है। बाजरा का उपभोग कई अलग–अलग तरीकों से किया जाता है जैसे दलिया, ब्रेड, किण्वित और अकिण्वित पेय, स्नैक्स आदि। बाजरा ऊर्जा का एक बहुत अच्छा स्रोत है। ये हृदय को स्वस्थ रखने के साथ–साथ वजन कम करने में भी मदद करता है। इसके उपयोग से हमारी पाचन शक्ति अच्छी होती है। कैंसर जैसी घातक बीमारी को रोकने में भी बाजरा मददगार हो सकता है। बाजरा रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करता है इसलिए मधुमेह रोगियों के लिए लाभकारी है।

भारत में प्रमुख बाजरा उत्पादक राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और गुजरात हैं। बाजरे का उपयोग मूल्यवान पशु चारे के रूप में भी किया जा सकता है। यह चीन, भारत, दक्षिण पूर्वी एशिया, सूडान, पाकिस्तान, अरब, रूस और नाइजीरिया की प्रमुख फसलों में से एक है। बाजरा एक गर्म मौसम की फसल है और 20–28 डिग्री सेल्सियस में सबसे अच्छा उगता है। बाजरा उच्च तापमान के लिए अधिक सहिष्णु है। बाजरा की फसल को औसतन 35–50 से.मी. के बीच की अधिकतम वर्षा की आवश्यकता होती है। लेकिन बाजरा उन क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है, जो 35 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा प्राप्त करते हैं।

किस्में 7 आर एच बी 58, पूसा 444, पी ए सी 903, आर एच बी 154, जवाहर बाजरा किस्म 2 , जी एच बी 558, पूसा 605, नंदी 321, अनंत, जी एच बी 526, सबुरी, नंदी 35, जी के 1004, प्रो एग्रो नं 1

3. फिंगर मिलेट (रागी)

वानस्पतिक नाम – *इल्यूसिन कोरकना*

सामान्य नाम – रागी

रागी की उत्पत्ति लगभग 5000 वर्ष पहले पूर्वी अफ्रीका में (पश्चिमी युगांडा से इथियोपिया तक) में जंगली प्रजाति के घरेलूकरण द्वारा हुई। यह सबसे प्राचीन ज्ञात घरेलू उष्णकटिबंधीय अफ्रीकी अनाज है। इसे भारत में लगभग 3000 साल पहले और दक्षिण अफ्रीका में लगभग 800 साल पहले लाया गया। रागी भारत में उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण मिलेट है। एक परिपक्व पौधे की ऊँचाई अफ्रीका और एशिया के ठण्डे, उच्च ऊँचाई वाले क्षेत्रों में 50–150 से.मी. तक होती है। रागी एक वार्षिक अनाज है। इसका पुष्पक्रम 4–19 उंगलीनुमा बाली का बना होता है जो परिपक्व होने पर मुट्ठी जैसा दिखाई देता है, इसलिए इसे रागी नाम दिया गया। देश के कई पहाड़ी क्षेत्रों का ये एक मुख्य भोजन है। इसे अनाज और चारा दोनों के रूप में उगाया जाता है। रागी के दाने को पकाने या भूनने पर अच्छी सुगंध आती है। रागी के अनाज को कई वर्षों तक कीट लगे बिना भंडार में रखा जा सकता है। यह

अकाल–ग्रस्त क्षेत्रों के लिए एक विशेष फसल है। इसकी फसल, अन्न के साथ–साथ पुआल भी प्रदान करती है जो पशु आहार के लिए काफी उपयोगी है। फिंगर मिलेट में प्रोटीन, खनिज (कैल्शियम और आयरन) और एमिनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। मेथेओनीन नामक एमिनो अम्ल, सैकड़ों–करोड़ों गरीब परिवारों (जो कि मांडयुक्त भोजन जैसा कासवा, पॉलिश्ड चावल, और मक्का मील को आहार में लेते हैं) के आहार में अनुपस्थित होता है, जबकि फिंगर मिलेट में यह उपस्थित होता है। रागी हमें चावल और गेहूं की तुलना में 10 गुना ज्यादा कैल्शियम प्रदान करता है।

भारत में उत्पादित कुल लघु (माइनर) मिलेट्स में से लगभग 85 प्रतिशत उत्पादन में रागी का योगदान होता है। भारत में रागी की खेती 1.19 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है जिसमें लगभग 1.98 मिलियन टन अनाज का उत्पादन होता है। भारत में कुल रागी उत्पादन का 59.52 प्रतिशत कर्नाटक में, 18.27 प्रतिशत तमिलनाडु में, 7.76 प्रतिशत उत्तराखण्ड में और लगभग 7.16 प्रतिशत महाराष्ट्र में होता है।

रागी उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु की फसल है और इसकी खेती 2100 मीटर की ऊँचाई तक की जा सकती है। इसके अंकुरण के लिए आवश्यक न्यूनतम तापमान 8–10 डिग्री सेल्सियस है। वृद्धि के दौरान 26–29 डिग्री सेल्सियस का औसत तापमान रेंज, फसल के समुचित विकास और अच्छी उपज के लिए सबसे अच्छा है।

किस्में – बिरसा गौरव ए 404, वीएल 144, वीएल 124, गोदावरी, रत्नागिरि, गुजरात नगली, पीआर–202 और इंडाफ 8

4. प्रोसो मिलेट

वानस्पतिक नाम – *पैनिकम मिलियासीयुम*
सामान्य नाम – चेना

प्रोसो मिलेट की उत्पत्ति भारत में हुई। यह भारत से दुनिया के अन्य भागों में वितरित हुआ। इसकी उत्पत्ति सम्भवतः पैनिकम साइलोपोडियम से हुई जो बर्मा, भारत और मलेशिया में पाया जाता है। प्रोसो मिलेट भारत में उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण लघु मिलेट है। यह एक वार्षिक शाक है। इसका पौधा 45–100 से.मी. की ऊँचाई तक बढ़ता है। प्रोसो मिलेट की फसल अपनी त्वरित परिपक्वता के कारण सूखे से बचने में सक्षम है। पानी की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता के साथ, कम अवधि की फसल (60 से 90 दिन) होने के कारण प्रोसो मिलेट सूखे की परिस्थितियों में बहुत कम प्रभावित होता है और इसलिए यह शुष्क भूमि क्षेत्रों में खेती के लिए बेहतर संभावनाएं उत्पन्न करता है। असिंचित परिस्थितियों में, आमतौर पर खरीफ के मौसम में प्रोसो मिलेट को उगाया जाता है, लेकिन जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां इसे ग्रीष्म ऋतु में भी उगाया जाता है।

प्रोसो मिलेट सबसे पुरानी अनाज फसलों में से एक है और दुनिया के कई हिस्सों में उगाया जाता है जहां इसे अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे कि कॉर्न मिलेट, हॉग मिलेट, हेशे मिलेट, प्रोसो मिलेट का कॉमन मिलेट आदि। इस मिलेट को भारत, जापान, चीन, मिस्र, अरब और पश्चिमी यूरोप में वृहद स्तर पर उगाया जाता है। भारत में प्रोसो मिलेट को बड़े पैमाने पर मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में उगाया जाता है।

प्रोसो मिलेट को गर्म जलवायु की फसल के रूप में जाना जाता है। यह दुनिया के गर्म क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। उन क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है, जहां पर कम वर्षा होती है।

किस्में – टी न ए उ–151, टी न ए उ–164, जी पी उ पी–8, प्रताप चेना–1, भवन, नागार्जुन, पी आर सी–1 और के–1

5. फॉक्सटेल मिलेट (कंगनी)

वानस्पतिक नाम – *सेटारिया इटालिका*
सामान्य नाम – काकुन, कंगनी

कॉक्सटेल मिलेट या कंगनी को इटैलियन मिलेट और जर्मन मिलेट के रूप में भी जाना जाता है। यह आमतौर पर भारत में वर्षा आधारित फसल के रूप में उगाया जाता है। इसमें एक सीधा पत्तीदार तना होता है जो 60–75 से.मी. लंबा होता है। स्पाइक (बाली) के भार के कारण इसका तना परिपक्वता पर झुक जाता है। क्षेत्रफल और उत्पादन के संदर्भ में, पिछले पांच वर्षों के दौरान 780 किलोग्राम / हेक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ भारत इस फसल का सबसे बड़ा उत्पादक है। राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश भारत में प्रमुख कंगनी उत्पादक राज्य हैं।

कंगनी को उष्णकटिबंधीय और साथ ही समशीतोष्ण क्षेत्रों में कम और मध्यम वर्षा के तहत उगाया जा सकता है। इसे 2000 मीटर की ऊँचाई तक और 50–75 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है।

किस्में : पंत सेटरिया–5, टीएनएयू–43, एचएमटी–100–1, एसआईए–326, पीएस–4, के–2, के–3 और कृष्ण देवराय।

6. लिटिल मिलेट (कुटकी)

वानस्पतिक नाम – *पैनिकम सुमात्रेंस*
सामान्य नाम – कुटकी

दक्षिण–पूर्व एशिया में कुटकी की उत्पत्ति हुई और अब यह पूरे भारत में उगाया जाता है।

यह एक वार्षिक शाकाहारी पौधा है, जो सीधी या मुड़ी हुई पत्तियों के साथ 30 से.मी. से 1 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ता है। कुटकी के पुष्पक्रम को पैनिकल कहते हैं, जो 4–15 से.मी. तक लम्बा होता है। अनाज (ग्रेन) गोल और चिकना और 1. 8–1.9 मि.मी. लंबा होता है। कुटकी एक अद्भुत मिलेट है, जो सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए उपयुक्त है। यह कब्ज को

रोकने में मदद करता है और पेट से संबंधित सभी समस्याओं को ठीक करता है। यह पुरुषों के वीर्य को बेहतर बनाता है। यह अनियमित मासिकधर्म की समस्या वाली महिलाओं के लिए भी मदद करता है। इसका उच्च फाइबर शरीर में वसा के जमाव को कम करता है।

कुटकी की खेती समुद्र तल से 2000 मीटर ऊँचाई तक की जा सकती है। यह सूखे और जल भराव जैसी विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी वृद्धि कर सकता है।

भारत के प्रमुख कुटकी उत्पादक राज्य उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश हैं। हमारे देश में कुटकी की खेती लगभग 2.27 लाख टन के कुल उत्पादन के साथ 2.34 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है।

किस्में – तारिणी, कोलाब, सबारा, जवाहर कुटकी–36, टीएनएयू–63, पायूर–1 और बिरसा गांधी–1

7. कोदो मिलेट

वानस्पतिक नाम – *पासपेलम स्क्रोबायकुलेटम*
सामान्य नाम – कोदो

कोदो मिलेट की उत्पत्ति उष्णकटिबंधीय अफ्रीका में हुई थी। भारत में कोदो मिलेट को लगभग 300 साल पहले लाया गया। कोदो मिलेट एक बीजपत्री वार्षिक घास है। इसका पुष्पक्रम 4–6 रेसीमों का बना जोता है। इसकी पतली, हल्की–हरी पत्तियों की लंबाई 20–40 सेंटीमीटर तक होती है। कोदो मिलेट के बीज बहुत छोटे और दीर्घवृत्तीय होते हैं। मधुमेह रोग से पीड़ित रोगियों से कोदो मिलेट को चावल के विकल्प के तौर पर लेने को कहा जाता है।

कोदो मिलेट बड़े पैमाने पर मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और कर्नाटक में उगाया जाता है। अरुणाचल प्रदेश के झूम क्षेत्र में भी इसकी खेती की जाती है।

कोदो मिलेट ज्यादातर गर्म और शुष्क जलवायु में उगाया जाता हैं यह अत्यधिक शुष्क सहिष्णु फसल है इसलिए, उन क्षेत्रों में उगाया जा सकता है जहां वर्षा बहुत कम और अनियमित होती है। यह 40 से 50 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से विकसित होता है।

किस्में – जेके–13, जेके–48, जीके–2, वंबन, आईपीएस 147–1, जेके–62, जेके–76, जीपीयूके–3 और खेरपा।

8. बार्नयार्ड मिलेट (झंगोरा)

वानस्पतिक नाम – *इकाईनोक्लोआ फ्रूमेन्टेसिआ*
सामान्य नाम – सावा

बार्नयार्ड मिलेट ऊँचाई में लगभग 50–95 से.मी. तक होता है। इसकी पत्तियां बिना लीगुल के सपाट और चमकीली होती हैं। अनाज सफेद या पीले रंग का कैरियोप्सिस होता है। मध्य एशिया से भारत पहुंचा बार्नयार्ड मिलेट (झंगोरा) उत्तराखण्ड के पारंपरिक खान–पान का अहम हिस्सा रहा है। लेकिन बाद के समय में इसे भी गरीबों का भोजन मानकर तिरस्कृत कर दिया गया। वेदों तक में झंगरू नाम से इस अनाज का वर्णन एक पौष्टिक आहार के रूप में किया गया है। हिंदी पट्टी में आज भी झंगोरा, व्रत वाले चावल के रूप में अपनी पहचान बनाये रखा है। झंगोरे में कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम तथा फास्फोरस आदि पौष्टिक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा सामान्य चावल की अपेक्षा कम होने तथा धीमी गति से पाचन होने के कारण यह शुगर के मरीजों के लिए उपयोगी भोजन है। इसमें हाई डाईटरी फाइबर शरीर में ग्लूकोज के स्तर को संतुलित रखते हैं। अपने पौषक तत्वों के कारण यह दिल के मरीजों के लिए भी काफी फायदेमंद है।

बार्नयार्ड मिलेट सभी मौसम की फसल है और मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में 1000–2000 मीटर के बीच की ऊँचाई पर उगाया जाता है। इसके लिए 600–800 मीटर वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है।

बार्नयार्ड मिलेट एक घरेलूकृत खाद्य फसल है, जो भारत में अनाज और चारा दोनों उद्देश्यों के लिए उगाई जाती है। यह विशेष रूप से हिमालय की पहाड़ियों में काफी लोकप्रिय है। यह पहाड़ी और आदिवासी कृषि की एक महत्वपूर्ण अंग है। यह बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में भी छोटे स्तर पर उगाया जाता है।

किस्में – वी एल–मदिरा 181, 172, 2007 प्रताप सानवा–1, कंचन।

मिलेट्स : पोषक तत्वों का भंडारगृह

भोजन और खेती के वर्तमतान परिदृश्य में मिलेट्स को महत्व देने के कई कारण हैं जिसमें से एक प्रमुख कारण है इसमें उपस्थित पोषक पदार्थ और उनसे प्राप्त होने वाला पोषण। मिलेट्स किसी भी पोषक मापदण्ड में चावल और गेहूँ से काफी आगे है। खनिज घटकों के संदर्भ में भी मिलेट चावल और गेहूँ से कहीं बेहतर है। मिलेट्स में चावल और गेहूँ तथा दूसरे अनाजों की तुलना में कई गुना ज्यादा फाइबर होता है। मिलेट्स चावल और गेहूँ से पोषक तत्वों के आधार पर क्यों बेहतर हैं, इसका आसानी से आकलन नीचे दी गई सारणी को देखकर किया जा सकता है।

एक मुख्य भोजन और हमारी खाद्य संस्कृति का अहम् हिस्सा होने के बाद भी मिलेट्स को आधुनिक शहरी उपभोक्ताओं के द्वारा मोटे और कुरूप अनाज के रूप में तिरष्कृत किया गया तथा मिलेट के स्थान पर अधिक परिष्कृत आहार की ओर ध्यान दिया गया। दुर्भाग्य से जिसे हम आज परिष्कृत आहार समझते हैं। उसमे हमारे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक पोषक तत्वों का बेहद अभाव होता है।

मिलेट्स और उसमें उपस्थित पोषक पदार्थ (प्रति 100 ग्राम)

मिलेट / पोषक पदार्थ	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	फाइबर (ग्राम)	खनिज (ग्राम)	लौह (मिलीग्राम)	कैल्शियम (मिलीग्राम)	कैलोरी (किलो कैलोरी)
पर्ल मिलेट	10.6	4.8	1.3	2.3	16.9	38	378
फिंगर मिलेट	7.3	1.5	3.6	2.7	3.9	344	336
फॉक्सटेल मिलेट	12.3	4	8	3.3	2.8	31	473
कोदो मिलेट	8.3	3.6	9	2.6	0.5	27	309
लिटिल मिलेट	7.7	5.2	7.6	1.3	9.3	17	207
बार्नयार्ड मिलेट	11.2	3.9	10.1	4.4	15.2	11	342
सोरघम	10.4	3.1	2	1.6	5.4	25	329
प्रोसो मिलेट	12.5	2.9	2.2	1.9	0.8	14	356
चावल	6.8	2.7	0.2	0.6	0.7	10	362
गेहूँ	11.8	2	1.2	1.5	5.3	41	348

फिंगर मिलेट में चावल की तुलना में 30 गुना अधिक जबकि अन्य मिलेट्स में कम से कम दो गुना अधिक कैल्शियम होता है। फाक्सटेल, लिटिल मिलेट में आयरन, चावल और अन्य सामान्य अनाजों से बहुत अधिक होता है हममें से अधिकांश लोग सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कि बीटा कैरोटीन को दवा की गोलियों और कैप्सूल के रूप में लेते हैं जबकि ऐसे सभी महत्वपूर्ण सूक्ष्म–पोषक तत्व मिलेट्स में प्रचुर मात्रा में होते हैं। विडंबना ही है कि हममें से अधिकांश लोग अनाज में चावल को काफी महत्व देते हे। जबकि चावल में इस बहुमूल्य सूक्ष्म पोषक तत्व की मात्रा नगण्य होती है।

प्रत्येक एकल मिलेट, पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर चावल एवं अन्य सामान्य अनाज से कई गुना बेहतर है और सम्भवतः कुपोषण से पीड़ित हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या के लिए मिलेट्स एक सबसे प्रभावी भोजन है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत विश्व कुपोषण सूचकांक में उप–सहेलियन अफ्रीका, जो दुनिया में सबसे गरीब क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, से काफी नीचे की स्थिति में है। इसीलिए विशेषज्ञों का मानना है कि भारत इस समय 'न्यूट्रिशनल आपातकाल' की स्थिति में है।

ग्रामीण इलाकों में गरीबी से प्रेरित कुपोषण के अतिरिक्त शहरों में रहने वाले लोग भी एक गंभीर पोषण संकट का सामना कर रहे हैं जो कि चिंता का विषय है। दुनिया की अधिकांश आबादी के मध्य मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग के बढ़ते मामले वास्तव में आहार–असंतुलन का ही परिणाम है। आहार में कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा और अन्य पोषण तत्वों की अनुपस्थिति इन सभी विकारों के लिए उत्तरदायी है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए हमें आहार में मिलेट्स का उपयोग अधिक करना होगा। वास्तव में कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स होने के कारण मिलेट्स मधुमेह रोगियों के लिए भी एक रामबाण आहार हो सकता है।

मिलेट्स और स्वास्थ्य

मिलेट्स में कई पोषक–औषधीय गुण होते हैं जिसके फलस्वरूप ये कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं जैसे निम्न रक्तचाप, हृदय रोग, कैंसर, ट्यूमर आदि को रोकने में सहायक होते हैं। मिलेट की प्रकृति मूल रूप से क्षारीय होती है। क्षारीय प्रकृति के आहार की अक्सर हमें अनुशंसा की जाती है क्योंकि यह उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। मिलेट्स की क्षारीय प्रकृति शरीर में एक संतुलित पी.एच. को स्थापित करने में सहायक होती है। संतुलित पी. एच. विभिन्न रोगों से बचाव के लिए अति आवश्यक होता है। मिलेट्स के हमारे स्वास्थ्य पर होने वाले कुछ महत्वपूर्ण लाभकारी प्रभाव निम्नलिखित हैं–

1. मिलेट्स और मधुमेह

मिलेट्स आधारित आहार लेने वाले लोगों में मधुमेह के काफी कम मामले मिलते हैं। मिलेट्स में उपस्थित फेनोलिक यौगिक जैसे अल्फा ग्लूकोसाइड्स, अग्न्याशयी एमाइलेस, जटिल कार्बोहाइड्रेट्स के विकार आधारित जल–अपघटन को रोक कर, भोजन के पश्चात रक्त शर्करा की बढ़ी हुई मात्रा को कम करते हैं। अवरोधक जैसे एल्डोस रिडक्टेज, सोर्बिटोल के एकत्रीकरण को रोककर मधुमेह–प्रेरित कैटेरेक्ट रोग के खतरे को कम करते हैं। रागी का उपभोग, रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित और एंटीऑक्सीडेंट के स्तर में सुधार करता है और

साथ ही साथ त्वचीय घावों के भरने की प्रक्रिया की गति में भी वृद्धि करता है।

2. मिलेट्स और हृदय रोग

मिलेट्स में मैग्नीशियम प्रचुर मात्रा में होता है। मैग्नीशियम, माइग्रेन और हृदयघात के दुष्प्रभाव को कम करने में सहायक होता है। मिलेट्स उन पादप–रसायनों से प्रचुर होते हैं जिनमें फैटिक एसिड घटक रूप में विद्यमान होता है, जो कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने के लिए जाना जाता है। फिंगर मिलेट प्लाज्मा ट्राई–गिलसरायड्स को अपचित करके हाइपो–लिपिडिमिक चूहों को हृदय–रोग से बचाता है।

3. मिलेट्स और सेलिएक रोग

सेलिएक रोग एक प्रतिरक्षा–सम्पादित आंत्रीय प्रदाह है, जो कि आनुवंशिक रूप से संवेदनशील व्यक्तियों में ग्लूटेन के अंतर्ग्रहण के कारण होता है। चूंकि मिलेट्स में ग्लूटेन नहीं होता है, अतः ये सेलिएक रोग से पीड़ित, ग्लूटेन के प्रति संवेदी व्यक्तियों के लिए एक उत्तम विकल्प है, जिन्हें गेहूँ और अन्य अनाजों में उपस्थित ग्लूटेन के कारण समस्या होती है।

4. मिलेट्स एवं कैंसर रोग

मिलेट्स में फिनोलिक अम्ल, टैनिन्स और फायटेट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो कि एंटी–न्युट्रिएंट्स होते हैं। एंटी–न्युट्रिएंट्स, पौधों में उपस्थित उन योगिकों को कहते हैं, जो कि हमारे शरीर के पोषक तत्वों को अवशोषित करने की सामर्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। यद्यपि ये एंटी–न्युट्रिएंट्स जंतुओं में कोलन और ब्रैस्ट कैंसर के खतरे को कम करते हैं। ऐसा प्रमाणित हो चुका है कि मिलेट्स में उपस्थित फेनोलिक्स, कैंसर के उद्भव एवं इसकी उन्नति को रोकने में प्रभावी हो सकते हैं।

5. मिलेट्स और प्रतिप्रदाह क्रिया

मिलेट्स में उपस्थित फैरुलिक एसिड अत्यंत शक्तिशाली एंटी–ऑक्सीडेंट है, जो मुक्तमूलकों का भक्षण और प्रदाह प्रतिक्रिया की तीव्रता को कम करता है। मुक्त मूलक ऐसे अस्थिर अणु होते हैं, जो कि कोशिकाओं में होने वाली सामान्य उपापचयी अभिक्रियाओं के समय उत्पन्न होते हैं और कोशिकाओं में उपस्थित दूसरे अणुओं को क्षति पहुँचाते हैं। यह क्षति कैंसर एवं दूसरे रोगों के जोखिम को बढ़ाती है। एंटी–ऑक्सीडेंट्स ऊतक क्षति को प्रभावी रूप से रोकते हैं तथा घाव भरने की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। ऐसा देखा गया है कि मधुमेह उद्दीपित चूहों में घाव भरने की प्रक्रिया पर फिंगर मिलेट के एंटी–ऑक्सीडेंट गुणों का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

6. मिलेट्स और एजिंग

प्रोटीन के एमिनो और अपचयी शर्कराओं के एल्कोहल क्रियात्मक समूहों के मध्य होने वाली रासायनिक अभिक्रिया को अविकरी– ग्लाइकोसिलेशन कहते हैं। अविकरी–ग्लाइकोसिलेशन, मधुमेह और ऐजिंग के लिए जिम्मेदार एक प्रमुख कारक है। मिलेट्स एंटीऑक्सीडेंट्स और फिनौलिक् यौगिकों में प्रचुर होते हैं। अतः मिलेट्स में मौजूद यह यौगिक अपनी एंटीऑक्सीडेंट सामर्थ्य के कारण एजिंग और उपापचयी सिंड्रोम से लड़ने में काफी महत्वपूर्ण होते हैं।

7. मिलेट्स और प्रतिसूक्ष्म जैविकी

मिलेट्स के अर्श और अर्क में सूक्ष्मजीवों की वृद्धि एवं विकास को रोकने की सामर्थ्य होती है। पर्ल मिलेट, बार्नयार्ड मिलेट, फाक्सटेल मिलेट और सोरघम के बीज प्रोटीन के अर्क को इनविट्रो विधि के द्वारा सूक्ष्मजीवों *रहिजोक्टोनिआ सोलानी, मैक्रोफोमिना फाजोलिना* और *फुसेरियम ओक्सीस्पोरम* के विकास को रोकने की क्षमता का आकलन किया गया और इन सभी मिलेट्स में से पर्ल मिलेट का बीज प्रोटीन अर्क, तीनों सूक्ष्मजीवों के विकास को रोकने में काफी प्रभावी सिद्ध हुआ।

निष्कर्ष : उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मिलेट्स गेहूँ, चावल और अन्य अनाजों की तुलना में पोषण के आधार पर काफी बेहतर हैं। इनकी खेती में भी बहुत कम लागत आती है। यह मौसम की विपरीत परिस्थितियों जैसे सूखा आदि का सामना करने में गेहूँ, चावल और अन्य अनाजों से कहीं अधिक सक्षम हैं। प्राचीन समय से ही भारत प्रमुख मिलेट उत्पादक राष्ट्रों में से एक रहा है, किंतु हरित क्रांति के पश्चात गेहूँ और चावल की खेती पर अधिक ध्यान दिया गया और मिलेट्स को अनदेखा किया गया। परिणामस्वरूप 1956–57 में हरित क्रांति के पूर्व जहां मिलेट के लिए उपलब्ध कृषि भूमि 37 मिलियन हेक्टेयर थी वहीं आज ये घटकर मात्र 14 मिलियन हेक्टेयर ही रह गयी है। नतीजतन मिलेट्स हमारे भोजन से धीरे–धीरे लुप्त होता गया। मिलेट्स के महत्व को समझते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2018 को 'नेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स' के रूप में मनाया। सरकार मिलेट्स की खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को विभिन्न स्तर पर प्रोत्साहित कर रही है। साथ ही साथ मिलेट आधारित उत्पादों जैसे आटा, दलिया आदि के बाजारीकरण को भी महत्व दिया जा रहा है। शासन के प्रयासों के अतिरिक्त हमें भी अपने बेहतर स्वास्थ्य के लिए मिलेट्स को गेहूँ और चावल तथा अन्य सामान्य अनाजों के स्थान पर अधिक वरीयता देनी चाहिए।

जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष धान के पौधे का अनुकूलन

गीत गोविन्द सीनम, विष्णु कुमार, सर्वेश कुमार एवं संजय द्विवेदी
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ – 226001

जलवायु परिवर्तन वर्तमान पीढ़ी का एक गंभीर समस्या है और हम इस समय निर्णायक स्थिति पर हैं। बदलते मौसम एवं वातावरण के चलते खाद्य उत्पादन पर बड़े स्तर पर खतरा मडरा रहा है। साथ ही साथ अन्य विनाशकारी घटनायें जैसे हिमनदों का पिघलना, समुद्र के जल स्तर का बढ़ना, आदि आम बात हो गयी हैं। जलवायु परिवर्तन की यह स्थिति अभूतपूर्व एवं सार्वभौमिक है। भविष्य में यह स्थिति और भी भयावह हो सकती है। ऐसा अनुमान है कि जलवायु परिवर्तन की वजह से पृथ्वी का तापमान लगभग 2.4 डिग्री तक बढ़ सकता है। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि अक्षांश के अनुसार फसलों के उत्पादन में भी अंतर आता है। यह सिद्ध हो चुका है कि फसलों का उत्पादन मध्य अक्षांतर से ऊपर की ओर बढ़ने पर बढ़ता है। इसके विपरीत नीचे की ओर बढ़ने पर फसलों का उत्पादन कम हो जाता है जहां पर खाने की खपत अधिक होती है।

मानव कल्याण के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग 7000 ईसा पूर्व से हो रहा है। आधुनिक समय में सूक्ष्मजीवों का उपयोग पौधों की वृद्धि एवं अन्न उत्पादन के लिए बहुतायत मात्रा में किया जा रहा है। जैविक नियंत्रण के अलावा सूक्ष्मजीवों का प्रयोग पौधों की वृद्धि के लिए भी किया जाता है। यह पौधों की उपापचयी क्रियाओं और कार्यिकी को बदल देते हैं जिससे कि पौधे अधिक मात्रा में खाद्य पदार्थों का अवशोषण कर लेते हैं। सूक्ष्मजीव जैसे माइकोराइजा, नीले–हरे शैवाल एवं पी.जी.पी. आर. (प्लांट ग्रोथ प्रमोटिंग राइजोबैक्टीरिया) भी पौधों के साथ पारस्परिक रूप से जुड़कर पोषक तत्वों को ग्रहण करने में सहायता प्रदान करते हैं। पी.जी.पी.आर. पौधों की प्रकंद (राइजोस्फेयर) में रहने वाले सूक्ष्मजीव हैं जो पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। यह बैक्टीरिया मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण करके पौधों को सरलता से उपलब्ध कराते हैं जिस कारण से पौधों में विषैले रासायनिक पदार्थों का अवशोषण कम हो जाता है। इन जीवाणुओं का उपयोग जैविक खेती और टिकाऊ कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियों में संभावित जैव उर्वरक के रूप में किया जा सकता है। पौधों में रोगों को नियंत्रित करने और इनके द्वारा मिट्टी से पोषक तत्वों को ग्रहण करने में पी.जी.पी.आर. के सकारात्मक प्रभावों पर प्रचुर मात्रा मे अध्ययन किया गया है।

चावल (*ओराइजा सटाइवा*) दुनिया का सबसे अधिक खपत होने वाला अनाज है। चावल एशिया में दो अरब से अधिक और अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में लाखों लोगों के लिए मुख्य भोजन है। वैश्विक खाद्य ऊर्जा का एक चौथाई भाग चावल द्वारा आपूर्ति किया जाता है। दुनिया के विभिन्न चावल उत्पादक देशों में भारत चावल उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। चावल के उत्पादन में भविष्य की माँग समान या उससे भी कम भूमि क्षेत्र से की जा रही है और इसलिए चावल की उत्पादकता (उपज प्रति हेक्टेयर) बढ़ाने की अति आवश्यकता है।

इस औद्योगिक युग में चावल उत्पादन प्रबंधन की रणनीति मुख्य रूप से रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से फसल की पैदावार बढ़ाने पर केंद्रित है। रसायनों के लगातार और हानिकारक उपयोग से मिट्टी के विभिन्न सूक्ष्मजीव, जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं, पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है और पर्यावरण में अवांछनीय परिवर्तन हो सकते हैं। इसके अलावा, उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग एशिया, जहाँ दुनिया का 90 प्रतिशत चावल उगाया जाता है, के गरीब किसानों के लिए बहुत महंगा है। एक वैकल्पिक विधि के रूप में पी.जी.पी.आर. का उपयोग करके जैविक दृष्टिकोण अपनाने की रणनीति द्वारा सिंथेटिक रसायनों के लगातार उपयोग से उत्पन्न पर्यावरणीय खतरों पर काबू पाया जा सकता है। इसके अलावा, जैविक विकल्पों को अपनाने का एक और फायदा है कि इसके द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति को पूरा किया जा सकता है। साथ ही साथ पौधों को हानिकारक सूक्ष्मजीवों से रक्षा करके बायोकन्ट्रोल के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है जो अंततः स्थायी चावल उत्पादन का कारण बन सकता है।

विभिन्न पी.जी.पी.आर. में, जीनस *एजोस्पाइरिलम* स्वतंत्र जीवी सूक्ष्मजीव है जो कृषि संबंधी कई पौधों की प्रजातियों की वृद्धि और उपज को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं। चावल की उपज को बढ़ाने के लिए चावल उत्पादन प्रबंधन में इनोकुलेंट के रूप में चावल *एजोस्पाइरिलम* के उपयोग की समीक्षा कई श्रमिकों द्वारा की गई है। जीवाणु जनक *एजोस्पाइरिलम, स्यूडोमोनास* और मेथाइलोबैक्टीरियम अक्सर धान के खेत के प्रकंद में पाए गए हैं इसलिए इसका उपयोग पूरे विश्व में कृषि जैव–रसायन के रूप में किया जाता है। हालाँकि, मृदा–जनित पादप रोगजनकों के जैवसंक्रमण के लिए एक एजेंट के रूप में *एजोस्पाइरिलम* के अनुप्रयोग की अभी भी पुष्टि नहीं की जा सकी है क्योंकि इनके पास प्रत्यक्ष दमनकारी रसायनों या हाइड्रोलाइटिक एंजाइमों की कमी है जो पादप रोगजनकों को नियंत्रित कर सकते हैं। हालाँकि, हाल ही के वर्षों में, साहित्य

उपलब्ध हुए हैं जो इस तंत्र का खंडन करते हैं और अब इसकी जांच की जा रही है। पी.जी.पी.आर. अंतस्त्वचा अवरोध को भेद, मूल वल्कुट (रुट कॉर्टेक्स) से संवहन तंत्र में प्रवेश करते हैं, और बाद में तना, पत्तियों और जड़ों में अन्तःपादपीय (एंडोफाइट) जीवों के रूप में पनपते हैं। ये पौधे को बिना नुकसान पहुँचाये उनके साथ सहजीवी जीवन व्यतीत करते हैं एवं उनकी वृद्धि एवं उपज को भी बढ़ावा देते हैं। बायोकन्ट्रोल के रूप में पी.जी.पी.आर. कैसे कार्य करता है, इसकी वर्तमान समझ निम्नलिखित तंत्र द्वारा की जा सकती है

1. पौधे के अंदर एक पारिस्थितिक निकेत की स्थापना के द्वारा।
2. क्रियाधार से प्रतिस्पर्धा।
3. निरोधात्मक एनलकेमिकल्स का उत्पादन।
4. रोगजनकों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए पौधों में प्रणालीगत प्रतिरोध को उत्पन्न करके।
5. अजैविक तनाव।

पी.जी.पी.आर. के विभिन्न प्रकार

बैक्टीरिया जो पौधे की जड़ों में उपनिवेश करते हैं और पादप वृद्धि को बढ़ावा देते हैं, उन्हें पौधे के विकास को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) के रूप में जाना जाता है और पौधों के प्रकंद में पाए जाने वाली कुल आबादी का केवल 1 से 2 प्रतिशत ही होते हैं। पादप वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) ग्राम नेगेटिव प्रकंद जीवाणु हैं, जो पौधे के विकास को बढ़ा सकते हैं। बैक्टीरिया का वर्ग जो कि पी.जी.पी.आर. से संबंधित है, में निम्नलिखित जीवाणु प्रजातियाँ शामिल हैं, *स्यूडोमोनस, एजोस्पाइरिलम, एजोटोबैक्टर, क्लेबीसेला, एंटरोबैक्टर, एल्काइलोजेन, आर्थ्रोबैक्टीरिया, बुर्कुलिया, बैसिलस* और *सेराशिया* (तालिका 1) सभी अथवा लगभग सभी पी.जी.पी.आर. पोषक तत्वों का अवशोषण कर पौधों की वृद्धि को बढ़ाते हैं एवं उत्पादन में सुधार करते हैं। इसके अलावा, प्रमुख पी.जी.पी.आर. *बैसिलस* और *स्यूडोमोनास* स्पीसीज की उत्पत्ति से संबंधित है। पी.जी.पी.आर. प्रकंद, मूल सतह (राइजोप्लेन), या मूल में उपनिवेशित करते हैं। प्रकंद में पी.जी.पी.आर. की आबादी सामान्य मिट्टी की तुलना में 10 से 100 गुना अधिक होती है, क्योंकि यह क्षेत्र पोषक तत्वों, अमीनो एसिड और शर्करा से समृद्ध होता है, जो बैक्टीरिया के लिए ऊर्जा और पोषक तत्वों का एक समृद्ध स्रोत प्रदान करता है। आदर्श पी.जी.पी.आर. की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–उच्च क्षमता, उच्च उत्तरजीवी क्षमता, पौधे की वृद्धि में बढ़ावा, आसान द्रव्यमान गुणन, व्यापक कार्यकारिणी क्षमता, रोगजनकों को नियंत्रित करने में सक्षम, प्रतिकूल प्रभाव से पौधे को बचाना और अन्य सूक्ष्म जीवाणुओं के साथ सहजीवी रूप से मौजूद होने में सक्षम है। इन भूमिकाओं के अलावा, ये मिट्टी में भारी धातुओं की गतिशीलता को भी बढ़ावा देते हैं और इस प्रकार भारी धातुओं से मिट्टी के जैविक उपचार (बायो रेमेडिएशन) को बढ़ाते हैं, जैसे कि आर्सेनिक, कैडमियम, पारा और भारी धातुओं की घुलनशीलता को बढ़ाना, आदि। पौधों की जैव उपलब्धता में कमी, मिट्टी की बनावट में सुधार, हानिकारक रसायनों को बेअसर करने और कीटों को नियंत्रित करने में और भारी धातुओं की विषाक्तता को संशोधित करने में पी.जी.पी.आर. की भूमिका अच्छी तरह से प्रलेखित है। राइजोबैक्टीरिया और पौधों के बीच सहजीवी सम्बन्ध को तीन बुनियादी अंतःक्रियाओं में वर्गीकृत किया जाता है – निष्क्रिय, नकारात्मक या सकारात्मक। इनमें से अधिकांश राइजोबैक्टीरिया पौधों के साथ सहजीवी सम्बन्ध में रहते हैं, जिसमें बैक्टीरिया सहजीवी पौधों के साथ एक सहज संपर्क स्थापित करते हैं। नकारात्मक सम्बन्ध में, रोगजनक राइजोबैक्टीरिया हाइड्रोजन साइनाइड या एथिलीन जैसे फाइटोटॉक्सिक पदार्थों का उत्पादन करते हैं, इस प्रकार पौधों के विकास और भौतिक क्रियाओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। सकारात्मक सम्बन्ध में, कुछ पी.जी.पी.आर. पौधे के विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं जिसमें पोषक तत्वों की घुलनशीलता, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, विकास नियामकों के उत्पादन जैसे प्रत्यक्ष तंत्र द्वारा पारस्परिक सम्बन्ध, शामिल हैं या अप्रत्यक्ष तंत्र जैसे कि माइकोराइजा विकास को बढ़ाने, रोगजनकों का प्रतिस्पर्धी बहिष्करण करने या फाइटोटॉक्सिक पदार्थों को हटाने में पी.जी.पी.आर. की मुख्य भूमिका है। पी.जी.पी.आर. को पौधे की जड़ की कोशिकाओं के साथ सम्बन्ध के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। ये मुख्यतः बाह्य पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया और अन्तराकोशीय पौधे के विकास को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया में वर्गीकृत किये गयें हैं। यदि पी.जी.पी.आर. की आबादी प्रकंद सतह पर मौजूद होती है, तो पी.जी.पी.आर. के इन समूहों को बाह्यकोशिकीय पादप वृद्धि–संवर्धन प्रकंद कहा जाता है, जबकि अन्तः–कोशीय पादप वृद्धि–संवर्धन राइजोबैक्टीरिया जड़ कोशिकाओं के विशेष नोड्यूलर संरचनाओं के अंदर स्थित होते हैं। जीवाणु जनक जैसे *एग्रोबैक्टीरियम, आर्थोबैक्टीरियम, एलोराईजोबियम, एजोराईजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, ब्रैडीराईजोबियम, बैसिलस, बर्कहोल्डेरिया, कौलोबैक्टीरिया, क्रोमोबैक्टीरियम, अरविनिया, फ्लेवोबैक्टीरियम, माइक्रोकोकस, मीजोराईजोबियम, स्यूडोमोनास* और *सेरेशिया* मुख्य हैं। अन्तः–कोशीय पादप वृद्धि–संवर्धन राइजोबैक्टीरिया में एंडोफाइट्स और फ्रैंकिया की प्रजातियाँ शामिल हैं, और पी.जी.पी.आर. वायुमंडलीय नाइट्रोजन (N_2) का स्थिरीकरण करते हैं।

तालिका–1 विभिन्न लाभकारी पी.जी.पी.आर. की सूची

पी.जी.पी.आर. की विभिन्न श्रेणियां				
अल्फा प्रोटो बैक्टीरिया	**बीटा प्रोटो बैक्टीरिया**	**गामा प्रोटो बैक्टीरिया**	**एक्टीनो बैक्टीरिया**	**फरमिक्यूट्स**
एजोराइजोबियम कॉलिनोडॉन्स	*बुर्खोल्डेरिया सेपासिया*	*क्लेबसिएला प्लान्टिकोला*	*कर्टोबक्टेरियम फ्लक्कुम्फसिएन्स*	*बेसिलस सेरेउस*
एजोस्पाइरिलम अमेंजोनेंसे	*बी. ग्लैडिओलाई*	*क्लुय्वेरा अस्कोर्बाटा*	*राठाईबैक्टर रठाई*	*बी. कोअगुलंस*
ए. हालोप्रीफेरेंस	*बी. ग्रामिनिस*	*सिट्रोबैक्टर फ्रयून्डी*	*स्ट्रेप्ट्रोमाइसिस ग्रिसेओविरिडिस*	*बी. लैटेरोपोरस*
ए. इराकेन्स	*बी. विएत्नमेन्सिस*	*स्यूडोमोनास एरुनिनोसा*		*बी. लाइकेनोफॉर्मिस*
ए. लिपोफेरम	*ह्यइड्रोजिनोफेगा स्यूडोफ्लाबा*	*पी. एरिओफेसेन्स*		*बी. मसेरंस*
ए. ब्राजीलेन्स		*पी. कोर्रुगाटा*		*बी. मेगोटेरियम*
फइलोबैक्टीरियम रूबियासिरम				*बी. माइक्वाइड्स*

मिट्टी में भारी धातुओं की गतिशीलता में पी.जी.पी.आर. की भूमिका :

पौधों के लिए पोषक तत्वों का प्रमुख प्रतिशत मिट्टी से लिया जाता है। पोषक तत्व मुख्यतः जाइलम द्वारा पौधों के अन्य भाग में पहुंचाये जाते हैं। विभिन्न गतिविधियों द्वारा पर्यावरण में भारी धातुओं का अत्यधिक निवेश दुनिया भर में एक प्रमुख चिंता का विषय बन गया है। पिछले कुछ दशकों में, पर्यावरण के हित पर कोई विचार किए बिना तेजी से औद्योगिकीकरण के चलते भारी धातुओं का प्रदूषण बढ़ा है जिसके फलस्वरूप मिट्टी की उर्वरकता पर विपरीत प्रभाव पड़े हैं तद्पश्चात फसल उत्पादकता पर भी प्रभाव पड़ा है। भारी धातुओं और अन्य जहरीले रसायनों द्वारा मृदा प्रदूषण से मिट्टी गठन, मिट्टी की अम्लता/क्षारीयता, विभिन्न आवश्यक तत्वों की उपलब्धता, और भारी धातुओं के संचय में परिवर्तन के कारण पौधों के विकास में प्रत्यक्ष और/या अप्रत्यक्ष कमी हुई है जिससे पौधों की विभिन्न शारीरिक और आणविक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारी धातुएँ जैसे जिंक, कॉपर, मॉलेब्डेनम, मैंगनीज, कोबॉल्ट और आयरन महत्वपूर्ण जैविक प्रक्रियाओं और पौधों के विकास के लिए आवश्यक हैं। हालाँकि, जहरीली धातुएँ जैसे, लेड, कैडमियम, मरकरी को पौधे की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक नहीं होती हैं, परन्तु जब ये जहरीली धातुएं अपनी औसतम मात्रा से ज्यादा बढ़ने लगती हैं तो ये फसल उत्पादकता को कम कर देती हैं। मिट्टी में पाए जाने वाले विषैले तत्वों की बहुतायत क्रम अग्रलिखित है लेड> क्रोमियम> आर्सेनिक> जिंक> कैडमियम> कॉपर> मरकरी> ये विषाक्त तत्व पौधों में अकारिकी सम्बन्धी असामान्यताएं और उपापचयी विकार पैदा करते हैं जो पौधों में उपज, यहां तक कि पादप जरायुता को बढ़ावा देते हैं। मिट्टी में भारी धातुएं विनिमेय अवस्था, कार्बोनेट अवस्था, लोहा और मैंगनीज ऑक्सीकरण अवस्था, कार्बनिक अवस्था और अवशिष्ट अवस्था के रूप में मौजूद रहती हैं। विनिमेय स्थिति, जो कुल धातु का केवल एक छोटा सा भाग है, मुख्य रूप से मिट्टी की सतह पर अवशोषित होता है। मिट्टी में धातुओं का प्रमुख अंश कार्बोनेट रूप में मौजूद रहता है। अम्लीय स्थिति के तहत यह आसानी से घुलनशील रूप में परिवर्तित हो जाता है। लोहे और मैंगनीज ऑक्सीकरण अवस्था में उपस्थित भारी धातु के ऑक्साइड्स के साथ क्रिया करके मिट्टी में अवशोषित कर लिए जाते हैं। भारी धातुओं की इस स्थिति को आसानी से अन्य रूपों में अलग किया जा सकता है। कार्बनिक सम्मिश्रण से बधे हुए भारी धातुओं (कार्बनिक अवस्था) में से कुछ आसानी से घुलनशील होते हैं और पौधे के लिए उपलब्ध होते हैं। शेष धातु समूह और भारी धातुओं का मुख्य रूप अवशिष्ट रूप (रिजिडयूअल फॉर्म) में रहता है। अवशिष्ट अवस्था में भारी धातुएँ बहुत स्थिर होती हैं और यह अंश पौधों को उपलब्ध नहीं होता है। सूक्ष्मजीव प्रकृति में तत्वों के चक्रण में एक मुख्य भूमिका निभाते हैं (चित्र–1)। पौधों की जड़ों में या आसपास रहने वाले पी.जी.पी.आर. सामान्य मृदा की तुलना में राइजोस्फीयर में पोषक तत्वों को परिवर्तित करने, जुटाने एवं बदलने में कुशल होते हैं। पी.जी.पी.आर. की कई प्रजातियाँ हैं जो फॉस्फोरस और पोटैशियम को राइजोस्फेरिक मिट्टी में घुलनशील बनाकर पौधे को उपलब्ध कराते हैं। *जेनेरा स्यूडोमोनास, एग्रोबैक्टीरियम, बैसिलस, राइजोबियम* और *फ्लैवोबैक्टीरियम* की विभिन्न जीवाणु प्रजातियां अकार्बनिक फॉस्फेट यौगिक जैसे हाइड्रॉक्सीएपेटाइट और रॉक फॉस्फेट को मृदा में घुलनशील बनाने में सक्षम हैं। बैक्टीरिया के कुछ समूह खनिज चट्टान से अघुलनशील पोटेशियम, सिलिकॉन और एल्यूमीनियम को भी घुलनशील बनाने के लिए जाने जाते हैं।

पी.जी.पी.आर. एक कम आणविक द्रव्यमान वाले लौह चिलेटर (आयरन चिलेटेशन), साइड्रोफोर का उत्पादन करते हैं, जो राइजोस्फेयर में खनिजों या कार्बनिक यौगिकों से लोहे को

घोलता है। इसके अलावा, साइडरोफोर अन्य भारी धातुओं जैसे एल्युमिनियम, कैडमियम, कॉपर, गैलिनियम, इन्डियम, लेड और जिंक के साथ भी स्थिर परिसरों (स्टेटेबल कॉम्प्लैक्स) का निर्माण करते हैं जो पर्यावरणीय जोखिम पैदा करने की क्षमता रखते हैं। पी.जी.पी.आर. पोषक तत्वों का संचय करते हैं और मिट्टी में मौजूद भारी धातुओं को एक सकारात्मक प्रक्रिया (पॉजिटिव प्रोसेस) के द्वारा कोशिका की सतह पर बाँधकर रखते हैं। चावल में कई पी.जी.पी.आर. प्रजातियाँ हैं जो लाभकारी तत्वों को पौधे के लिए सुगम बनाती हैं और साथ ही साथ प्रकंद क्षेत्र से विषाक्त चीजों को बाहर निकालती हैं। *एजोस्पाइरिलम* और अन्य पी.जी.पी.आर. प्रजातियाँ बताई गयी हैं जो राइजोस्फियर में ऑक्सीजन के वातावरण को बढ़ाती हैं जो कि चावल के पौधे की जड़ों में लौह पट्टिका (आयरन प्लेक) बनाने में मददगार सिद्ध होता है। चावल की जड़ में बनाई गई आयरन प्लाक–आर्सेनिक-III को कम विषाक्त और कम गतिशील आर्सेनिक(V) के रूप में ऑक्सीकृत करने में मदद करती है। पी.जी.पी.आर. मेथाइलोबैक्टिरियम ओराइजी स्ट्रेन सीएमबीएम 20 और बर्कहोल्डेरिया स्पीशीज स्ट्रेन सीएमबीएम 40 चावल (*ओराइजा सटाइवा*) से निकाली गयी हैं जो मिट्टी में निकिल और कैडमियम को मृदा में ही स्थिर करके पौधों द्वारा ऊपर ले जाने से रोकती हैं।

चावल में रोगजनकों को नियंत्रित करने में पी.जी.पी.आर. की भूमिका

भारी धातुओं के विषाक्त प्रभाव को दूर करने और पौधों की वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा देने के अलावा भी पी.जी.पी.आर. मृदा जनित पादप रोगजनक सूक्ष्मजीवों से एलेलोपैथी की क्रिया द्वारा पौधों में होने वाले रोगों को नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न रोग जो धान के पौधे के लिए बहुत आम हैं, जैसे कि बैक्टीरिया से होने वाली ब्लाइट बीमारी और कवक से होने वाली ब्लास्ट बीमारी आदि चावल में ब्लास्ट रोग, रोगजनक कवक *मैग्नापोर्थी ओराइजी* के कारण होता है, जिसके कारण से 85 से अधिक देशों में फसल नष्ट हो जाती है। ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक वर्ष यह रोग विश्व स्तर पर लगभग 30% चावल उत्पादन को नष्ट कर देता है। दुर्भाग्य से, आज तक इस रोगजनक कवक का स्थायी एवं पर्याप्त नियंत्रण प्रदान करने का कोई प्रभावी साधन नहीं मिला है। पी.जी.पी.आर. में *स्यूडोमोनस* प्रजातियाँ रोगजनकों के जैव नियंत्रण के लिए अच्छी तरह से अध्ययन की गई हैं, क्योंकि ये फेनाजिन्स, हाइड्रोजन सायनाइड 2,4–डाइ एसिटिलफ्लारो ग्लुकीनॉल, पाइरोलिनिट्रिन, पायोलयूटेओरीन, साइक्लिप लिपोपेप्टाइड्स टेंसिन और विस्कोसिनामाइड जैसे कई रोगाणुरोधी द्वितीयक उपापचयी उत्पादों का उत्पादन करते हैं। विभिन्न पी.जी.पी.आर. जो चावल के प्रकंद क्षेत्र में मौजूद होते हैं, रोगजनक बैक्टीरिया और अन्य रोगजनकों के साथ एलेलोपैथी (चित्र सं.–1) के द्वारा प्रतिस्पर्धा करते हैं। चावल के प्रकंद क्षेत्र में मुख्य पी.जी.पी.आर. में *एजोस्पाइरिलम ओराइजा, बैसिलस स्पीसीज, एंटरोकोकस स्पीसीज, क्लॉस्ट्रीडियम स्पीसीज, स्यूडोमोनास* स्पीसीज इत्यादि हैं।

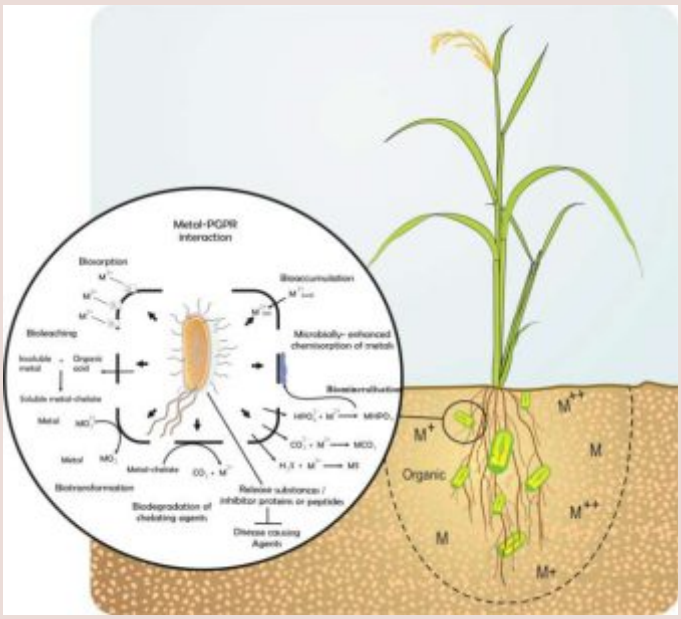

चित्र संख्या–1 : चावल के प्रकन्द में पी.जी.पी.आर. द्वारा पोषक तत्वों की गतिशीलता एवं रोगजनक जैव नियंत्रण का तन्त्र (कुमार एवं अन्य, 2020)

एक अध्ययन में बैक्टीरिया एंडोफाइट के प्रभाव को देखा गया जिसमें *एजोस्पाइरिलम* के रोग प्रतिरोधी क्षमता का अध्ययन हुआ जिससे यह पता चला कि *एजोस्पाइरिलम,* कवक मैग्नाफोर्टे ओराइजा द्वारा जनित बीमारी, ब्लास्ट डिसीज से धान के पौधे को प्रतिरक्षा प्रदान करता है। उन्होंने चावल के पौधे में रोगजनक को नियंत्रित करने में बैक्टीरिया स्ट्रेन पीबीजेडआई और बी 510 की भूमिका का अध्ययन किया। अध्ययन में यह भी देखा गया कि धान के पौधे द्वारा न तो सैलिसिलिक एसिड (एस.ए.) संचय और न ही रोगजनन–संबंधी (पीआर) जीन की अभिव्यक्ति हुई। लेखकों ने निष्कर्ष निकाला कि स्ट्रेन बी 510 पौधे में एक अनोखे प्रकार के प्रतिरोध तंत्र को सक्रिय करके चावल में रोग प्रतिरोध क्षमता को प्रेरित कर उसे रोगजनित कवकों के संक्रमण और उनसे होने वाली बीमारियों से रक्षा करता है। शिवमणि व अन्य (1987) ने बताया कि *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* के उपभेद *जैंथोमोनास ओराइजी* के विकास को बाधित कर देते हैं। एक अन्य अध्ययन में *बैक्टीरियल स्ट्रेन स्यूडोमोनास एरुजिनोसा* के प्रभाव को कवक *राइजोक्टोनिया ओराइजा–सैटाइवा* दिखाया गया जिसमे यह पाया गया कि पी.जी.पी.आर. 35% तक इस कवक के संक्रमण को रोक सकता है और साथ ही साथ पौधे के विकास को भी बढ़ावा देता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को संतुलित करने में पी.जी.पी.आर. की भूमिका

पौधों द्वारा लाभकारी जीवाणुओं के साथ संपर्क से पौधों की वृद्धि में महत्वपूर्ण बढ़त हुई है। पी.जी.पी.आर. इंटरैक्शन के परिणामस्वरूप उच्च पादप जैवद्रव्यमान, उच्च पोषण मूल्य, बेहतर जीवित रहने की दर में इजाफा हुआ है। पी.जी.पी.आर. कई वातावरणों में पौधों में उल्लेखनीय रूप से सुधार करने के

लिए जाने जाते हैं। पी.जी.पी.आर. की वजह से होने वाले कुछ सामान्य लाभ जैसे जड़ विकास में वृद्धि, जैविक तनाव एवं अजैविक तनाव से पौधे को प्रतिरक्षा प्रदान करना आदि हैं और साथ ही साथ मिट्टी में उपस्थित प्रदूषकों, कीटों और रोगजनकों से प्रतिरक्षा प्रदान करते हैं। भारी धातुओं के प्रति उपर्युक्त बताई गयी क्रियाविधि के अलावा पौधे लाभदायक मिट्टी के रोगाणुओं के साथ परस्पर सहजीवी सम्बंध स्थापित कर भारी धातु तनाव से निपटने के लिए अपनी क्षमता को बढ़ाते हैं। भारी धातु प्रदूषित मिट्टी में पी.जी.पी.आर. की कार्यप्रणाली माइक्रोपार्ट्नर (पौधे से जुड़े बैक्टीरिया) और पौधे दोनों की तरफ से प्रभावित हो सकती है इसलिए, भारी धातु प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव को कम करने के लिए सहयोगी तंत्र के साथ–साथ पी.जी.पी.आर. की बायोरेमेडिएशन क्षमता भारी धातु प्रदुषण के हानिकारक प्रभाव से बचा सकती है। धातु तनाव (मेटल स्ट्रेस) को दूर करने के लिए, पी.जी.पी.आर. ने कई तन्त्र विकसित किये हैं जिसके द्वारा ये भारी धातुओं के अवशोषण को सहन कर लेते हैं। इस तरह के तंत्र में शामिल हैं – कोशिका से जहरीले धातु आयनों को बाहर निकालना कोशिका के अंदर धातु आयनों का संचय और अनुक्रम (एक्यूम्यलेशन एंड सिक्वस्ट्रेशन); जहरीले धातु को धातु के कम जहरीले रूपों में बदलना और धातुओं का अवशोषण बाहर निकालना। पी.जी.पी.आर. बैक्टीरिया होने के नाते, इनमें प्लास्मिड होता है, जो विभिन्न भारी धातुओं के लिए प्रतिरोधी जीन्स का वहन करते हैं। पी.जी.पी.आर. का यह गुण इसे भारी धातु प्रदूषित क्षेत्र में बचाव के लिए एक आदर्श सूक्ष्मजीव बनाता है। पी.जी.पी.आर. में अब तक भारी धातुओं में जस्ता, कैडमियम और कोबाल्ट के लिए प्रतिरोधी जीन पाए गए हैं। ऐसा माना जाता है कि ये जीन्स कोशिका झिल्ली में ईफ्लक्स प्रोटीन चैनल बनाते हैं जो शायद एटीपेज प्रकार का होता है। पी.जी.पी.आर. आर्सेनिक, क्रोमियम और कैडमियम से भी पौधों की रक्षा करते हैं। ऐसी स्थितियों में जब जैविक और अजैविक तनावों को समवर्ती रूप से लागू किया जाता है, तब अलग–अलग तनाव में पौधों की प्रतिक्रिया भी अलग–अलग होती है। पौधों की प्रतिक्रिया जब जैविक और अजैविक दोनों तनावों के संपर्क में होती है, तो पी.जी.पी.आर. अजैविक तनाव के प्रतिरोध में सुधार करके जैविक तनाव के प्रभाव को कम करते हैं। पी.जी.पी.आर. में विभिन्न पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले हार्मोनों की उत्पत्ति द्वारा पौधे की उत्पादकता में सुधार भी लाते हैं। इंडोल–3–एसिटिक एसिड (आई.ए.ए.) जड़ विकास (विशेष रूप से पार्श्व जड़ों) को बढ़ाकर पौधे की पोषण की स्थिति में अप्रत्यक्ष रूप से सुधार करने के लिए जाना जाता है, जिससे पौधे को मिट्टी क्रियाधार (सॉइल सब्सट्रेट) से अधिक मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। पी.जी.पी.आर. जिब्रैलिन्स (जी.ए.) का उत्पादन भी करते हैं और पौधे के विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये हार्मोन पौधों में स्वाभाविक रूप से मौजूद होते हैं, और बीज के अंकुरण, तने की वृद्धि, पत्ती विस्तार, जड़ विकास और रुट हेयर जैसी प्रमुख प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए जाने जाते हैं। कई पीजीपीआर 1–एमिनोसाइक्लोप्रोपेन–1–कार्बोक्जिलिक एसिड (ए.सी.सी.) को नष्ट कर देते हैं, और जो नाइट्रोजन उत्पाद बनते हैं वो पौधों के लिए सुगम रूप में रहते हैं। बायोसिंथेसाइज्ड एसीसी एथिलीन का एक अग्रदूत है, यह हार्मोन मुख्यतः पौधों में तनाव के दौरान बढ़ जाता है। पी.जी.पी.आर. एथिलीन सिग्नलिंग को रोक देते हैं जिससे पौधे को तनाव से संबंधित नुकसान नहीं होता है। पी.जी.पी.आर. पौधों में तनाव से संबंधित ए.बी.ए. संचय को कम करके प्रकाश संश्लेषण दक्षता को संरक्षित कर लवणता तनाव (सैलिनिटी स्ट्रेट) से पौधों को प्रतिरक्षा प्रदान करते हैं। तापमान बढ़ने के कारण ग्लोबल वार्मिंग की वजह से बढ़ते तापमान से अधिकांश कृषि फसलों पर खतरा मंडरा रहा है। ऊष्मा या शीत तनाव (हीट या कोल्ड स्ट्रेस) में वृद्धि की अनुकूलन क्षमता (अडॉप्टेशन कैपेसिटी) वाले पौधों का विकास एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जो पौधों को उष्णकटिबंधीय तापमान (सबट्रॉपिकल टेम्पेरेचर) स्थितियों में लाभप्रद और उत्पादन बनाए रखने में कारगर साबित हो। एक गर्म अर्ध शुष्क पर्यावरण से पृथक किए हुए *स्यूडोमोनस एरुजिनोसा* के टीकाकरण से ज्वार अंकुर *(सोरघम सीड्लिंगस)* में हीट स्ट्रेस में जीवन दर, विकास और जैव रासायनिक मापदंडों में सुधार देखा गया जबकि औसतम तापमान पर बायोमास के उत्पादन पर प्रभावित नहीं देखा गया। पीजीपीआर विभिन्न तंत्रों के माध्यम से साल्ट स्ट्रेस के लक्षणों को कम कर सकता है। सोडियम आयन बंधित वाह्यपॉलिसैकेराइड (एनए बाइन्डिंग एक्सोपॉलिसैकेराइड) का उत्पादन, आयन समस्थिति (आयरन होमीओस्टेसस) में सुधार, एसीसी डेमिनमिनस के माध्यम से पौधों में एथिलीन के स्तर में कमी, और आई.ए.ए. का संश्लेषण।

सिफारिशें एवं भविष्य की संभावनायें

पौधे मृदाजनित सूक्ष्मजीवों की आबादी के साथ विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करते हैं जैसे सहभोजिता (कमेंसैलिस्म), सहजीविता (सिम्बायोसिस) आदि। पौधों और पी.जी.पी.आर. के लगातार संपर्क/सम्बन्ध से पौधों के विकास एवं वृद्धि में व्यापक रूप से इजाफा हुआ है। एक प्रमुख वर्तमान वैज्ञानिक चुनौती यह है कि कैसे ये भिन्न–भिन्न संकेतन मार्ग पौधों के विकास और विकास के समन्वय के लिए कैसे एकीकृत होते हैं, और पी.जी.पी.आर. हार्मोनल नेटवर्क को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। वैश्विक जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के तहत आने वाले भविष्य में, इन तथ्यों की बेहतर समझ और पौधों के साथ पी.जी.पी.आर. का संपर्क, टिकाऊ कृषि प्रणाली के विकास में योगदान देगा। पी.जी.पी.आर. का उपयोग स्थायी और पारिस्थितिक रूप से विवेकपूर्ण कृषि उत्पादन के लिए एक वैकल्पिक विधि (अलटरनेट स्ट्रेटेजी) के रूप में किया जा सकता है।

मॉस गार्डेन तथा मॉस हाउस का सृजन एवं महत्व

दर्शन शुक्ला, अंकिता वर्मा एवं आशीष कुमार अस्थाना
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

अगर हम मॉस गार्डेन की बात करते हैं तो सबसे पहले बात आती है जापान के कई मंदिर या पवित्र स्थल जहाँ मॉस के बड़े–बड़े लान विभिन्न प्रकार के मॉस के संग्रह के साथ कई शताब्दी से सँजोकर रखे गए हैं क्योंकि ये पौधे पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें कई ऐसी प्रजातियाँ जो औषधीय रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनके संरक्षण हेतु मॉस गार्डेन व मॉस हाउस का निर्माण अत्यंत आवश्यक है। मॉस गार्डेन के बारे में बात करने से पहले थोड़ा मॉस या ब्रायोफाइट्स के बारे में जान लेना आवश्यक है।

मॉस (ब्रायोफाइटा) क्या है ?

मॉस, वास्तविक संवहन ऊतक रहित पुष्प विहीन छोटे पौधे होते हैं। पादप जगत में इनका स्थान शैवाल के बाद आता है। अगर इनकी विविधता की बात करें तो इनका स्थान पुष्पीय पौधों के बाद दूसरा है। ये जैव–विविधता के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। यह संसार के लगभग हर भू–भाग के छाया व नमदार जगहों पर पाये जाते हैं तथा ये पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन पौधों की सतह सामान्य क्यूटिकिल परत रहित होती है, जिससे ये नमी को अवशोषित करती हैं धूल के कणों को भी सतह से चिपका के रखती हैं। इनमे राइज़ोइड्स पाये जाते हैं जो मिट्टी में पकड़ बनाए रखने में इनकी मदद करते हैं। ब्रायोफाइट्स के जीवन काल की प्रमुख अवस्था युग्मकोद्भिद (गैमेटोफिटिक) अवस्था होती है। इसलिए इसे गैमेटोफिटिक पौधे भी कहते हैं।

आरंभ में ब्रायोफाइटा का वर्गीकरण दो भागों : हिपैटिसी और मसाई में हुआ था, परन्तु 20वी शताब्दी के शुरुआत में हिपैटिसी से एन्थोसिरेटेल्स को अलग करके एक नया उपवर्ग एंथोसिरोटी में रखा गया। वर्तमान में प्रायः अधिकांश अध्ययनकर्ता ब्रायोफाइटा का अध्ययन तीन उपवर्गों में करते हैं।

लिवरवर्ट (मार्कैंशिओफाइटा)

हार्नवर्ट (एंथोसिरोटोफाइटा)

मॉस (ब्रायोफाइटा)

ब्रायोफाइटस् के महत्व

ब्रायोफाइटस् जैव–विविधता का एक प्रमुख अंग होने के साथ–साथ, कई आर्थिक महत्व भी रखते हैं जो कि निम्नलिखित हैं ।

मॉस की कई प्रजातियाँ भूमि के कटाव को रोकती हैं तथा मिट्टी में पोषक तत्वो का संरक्षण भी करती हैं। *पॉलिट्राइकम कम्युनिस*, ऊर्ध्वाधर उगती हैं तथा इनमे लंबे राईज्वाइड्स पाये जाते हैं। इसी कारण से ये पहाड़ी क्षेत्रों में मृदा के कणो को पकड़ के रखते हैं जिनसे मृदा का कटाव नहीं होता है तथा पोषक तत्व मृदा में बने रहते हैं। इसके अलावा *थूइडियम डेलीकैटुलम* जो फर्न की तरह नालियां व गढ्ढ़ों के किनारे उगते हैं तथा जल के तेज प्रवाह से मिट्टी की कटान को रोकते है (मार्टिन 2015)। *बार्बूला, ब्रायम* एवं *वेसिया* सड़क के किनारे मृदा कटाव को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (ग्लाईम 2007)। विकसित संवहन ऊतक रहित होने के कारण ब्रायोफाइटा पोषक तत्वों के साथ साथ भारी धातुओं को भी अवशोषित करते हैं उदाहरण के तौर पर *मार्कैन्शिया पॉलीमॉर्फा* प्रजाति लेड का संचयन अधिक मात्रा मे करती हैं तथा *पौटिया ट्रनकाटा, पॉलीट्राइकम ओबीएन्स, डाइक्रनेला बेटेरोमैला* और *ब्रायम अर्जेन्टियम*, कैडमियम, कॉपर और जिंक के प्रति अत्यधिक सहनशील होते हैं। *हिप्नम क्यूप्रेसिफोर्मि*, तथा लाईकेन पुष्पीय पौधों की तुलना में तीन गुना ज्यादा जिंक, कापर, तथा कैडमियम को संचित करने में सक्षम हैं (ग्लाईम 2007)। अगर हम ईंधन की बात करें तो मॉस को बहुत समय पहले से ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। विश्वयुद्ध के समय आइरिश तथा स्वीडन की महिलाएं स्फैगनम को एक स्वच्छ ईंधन के रूप में प्रयोग करती थीं। अब भी उत्तरी–यूरोपिय देशों, खासकर फिनलैंड, जर्मनी, आयरलैंड, पोलैंड, रशिया और स्वीडन में मास ईंधन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है (ग्लाईम 2007)। बिजली उत्पादन हेतु सोवियत यूनियन तथा आयरलैंड क्रमशः 70 मिलियन तथा 3.5 मिलियन टन, मॉस का प्रयोग प्रतिवर्ष करते हैं (ग्लाईम 2007)। कार्बन–चक्र में ब्रायोफाइटस् एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा कार्बन संचयन का सबसे बड़ा कोष पीटलैंड (स्फैगनम मॉस के ढ़ेर) को कहा जाता है। पीटलैंड इतने कार्बन का संचयन करती है, जितना शायद पृथ्वी के वायुमंडल में हो। यह लगभग 198 से 502 बिलियन टन कार्बन को पृथक करती है (मार्टिन 2015)। ब्रायोफाइट्स के कई औषधि गुण भी होते हैं जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं – *मार्कैन्शिया पोलीमोर्फा* को चीन में पीलिया या यकृत से जुड़े रोगों के लिए प्रयोग करते हैं। पंत व तिवारी (1989) के द्वारा बताया गया है की हिमालय के क्षेत्र मॉस के राख को शहद और वसा के साथ मिलाकर दवा के रुप में प्रयोग किया जाता है। पॉलीट्राइकम मॉस का पाउडर बनाकर तेल के साथ बालों में लगाने से बालों में वृद्धि होती है। *प्लेजियोकज्मा अपेंडिकुलेटम* के पेस्ट को त्वचा विकार हेतु प्रयोग में लाया जाता है (साहू एवं अस्थाना 2013)।

मॉस गार्डेन

जापान में मॉस गार्डेन को पारम्परिक रुप से शाही परिवारों के द्वारा लगाया जाता था, जिन्हे आज भी बनाए रखा गया है। पर कुछ दशको से मॉस गार्डेन को अनुसंधान तथा प्रयोग हेतु

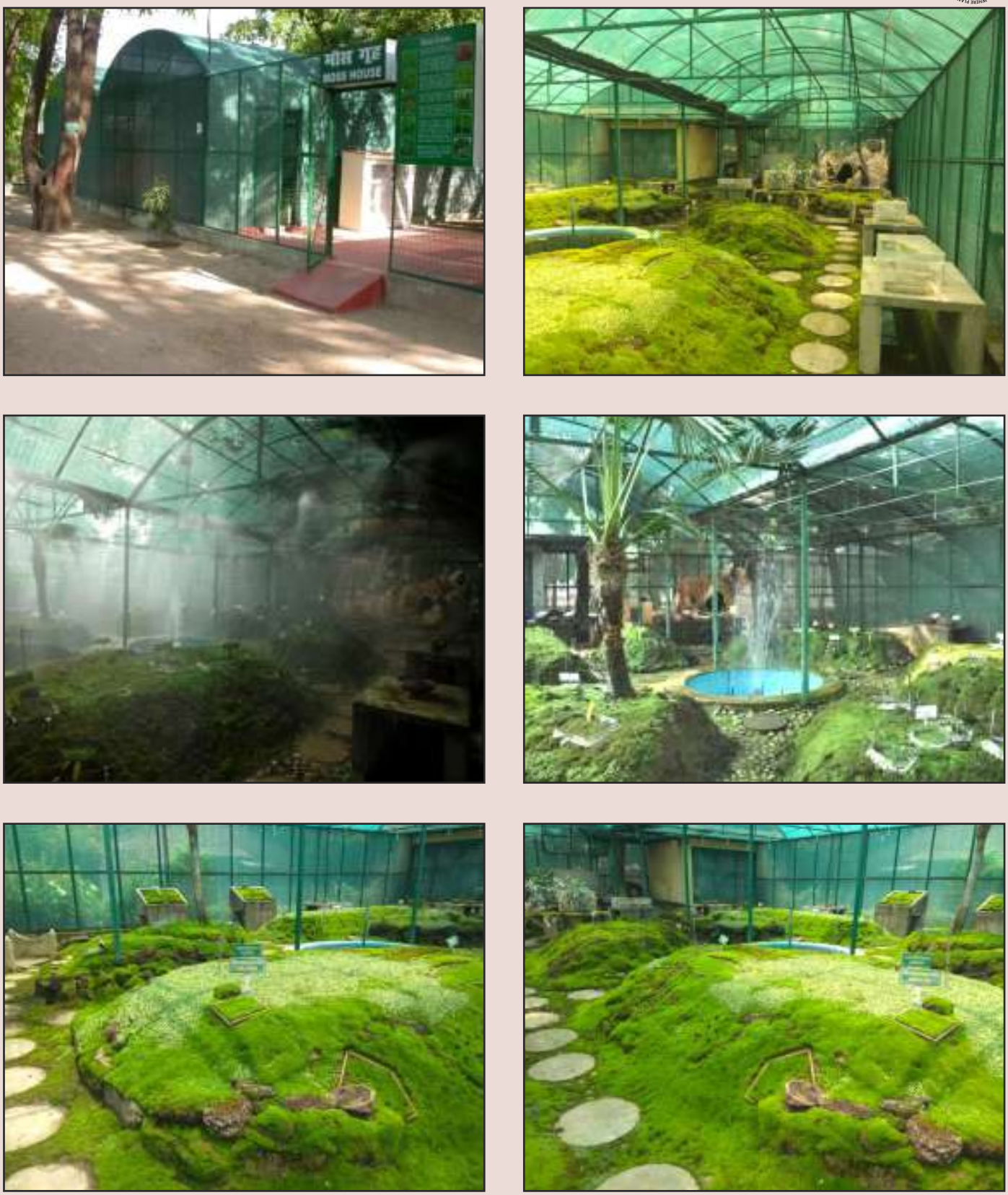

चित्र संख्या–1 : वै.औ.अ.प.– राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के बोटेनिकल गार्डेन मे स्थित मॉस हाउस का परिदृश्य

विश्व के कई देशों में संरक्षित भी किया जा रहा है। इसके अलावा कई मॉस गार्डेन हरियाली तथा सजावटी रूप में भी बनाए जाते हैं। दुनिया के कुछ मॉस गार्डेन निम्नलिखित हैं।

1. जापान सेरेन टेंपल :
जिसे कोकी–देरा (मॉस टेंपल) या शाइहों–जी के नाम से भी जाना जाता है, जो टोक्यो में स्थित है। यहाँ हर वर्ष हजारों की संख्या में पर्यटक आते हैं। इसे 574–677 ईसवीं में शाही बगीचे के तौर पर राजकुमार शाटोकुतइशी के द्वारा बनाया गया था। यहाँ ब्रायोफाइट्स की लगभग 120 प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमे *पॉलीट्राइकम जुनिपेरम, क्लीमैसियम, डैक्रेनम, हिप्नम, रैकोमेट्रियम* तथा *स्फैगनम* प्रमुख है, इसके अलावा *लिवरवर्ट–मार्केन्शिया पॉलीमॉर्फा, बजानिया, कोनोसिफैलम, पोरेला* आदि पाये जाते है (मार्टिन 2015)।

2. वैज्ञानिक अनुसंधान :
1930 में विलियम बायार्डकटिंग में (बायर्डकटिंग अरबोरेटम) बना मॉस गार्डेन आज भी है। यह लॉग आईलैंड, न्यूयार्क में स्थित है, जिसे फ्रेडरिक ला आलमस्टेड ने स्थापित किया था (मार्टिन 2015)।

3. जापान गार्डेन :
यह मिसूरी बोटेनिकल गार्डेन सेंट लुईस, मिसूरी में स्थित है शांति तथा सद्भावना का प्रतीक है। इसे 1977 में जापान के गार्डेन से प्रभावित होकर बनाया गया था, जो की 14 एकड़ में फैला है। यहाँ पर मॉस की प्रमुख प्रजातियाँ *डैक्रेनम, ल्यूकोब्रायम, पोलीट्राइकम, थुइडियम, हिपनम* आदि है। इसके अलावा उत्तरीय अमेरिका में कुछ प्रमुख मॉस गार्डेन स्थित है (मार्टिन 2015)।

- लीला बार्न्सचीथमलर्निंग मॉसगार्डेन, हाईलैंड, उत्तरीय कैरोलाइना
- ह्यूमस जापानीज़ स्ट्रोल गार्डेन, मिल नेक, न्यूयॉर्क
- जापनीज़ टी गार्डेन, गोल्डेन गेट, सैन–फ्रांसिसको, कैलिफोर्निया

रायल बोटेनिकल गार्डेन, ईडेनबर्ग, स्काटलैंड, यहाँ के मॉस गार्डेन में यूनाइटेड किंगडम तथा स्काटलैंड के कुछ प्रमुख प्रजातियों का संरक्षण किया गया है जैसे *राइटिडियम रुगोसम* (लाईमल विंग मॉस), इसके अलावा यहाँ हिमालय के कुछ प्रमुख *प्लेजियोकाइला कैरिंगटोनि* तथा *मार्केन्शिया क्वाडरेटा* जिसकी संरचना जटिल है तथा इसका फाइलोजेनिक महत्व है, अनुसंधान हेतु संरक्षित किया गया है। यहाँ की कुछ और प्रजातियाँ इस प्रकार है, *हाइमेनोडोन्टोप्सिस बाइफोरिया, पाइरोब्रायम, बीफेरियम,* (न्यूजीलैंड) तथा *मोनिओड़ेंड्रोन कोमेटम* जो संरक्षित है।

4. मॉस गार्डेन लिंगाधर (खुर्पाताल) वन वर्धनीय, नैनीताल, उत्तराखंड यह भारत का पहला मॉस गार्डेन है जो की उत्तराखंड की पहाड़ियों में बसा है। यह गार्डेन लोगों को प्रकृति के साथ तालमेल तथा मॉस के महत्व बताने हेतु बनाया गया है। यह 9000 फिट (समुद्र तल से) की ऊँचाई पर स्थित है, जो की 10 हेक्टेयर में फैला है। इसको वॉटरमैन ऑफ इंडिया के नाम से प्रसिद्ध राजेंद्र सिंह के नेतृत्व में बनाया गया है।

5. अगर हम भारत में मॉस को अनुकूलित परिस्थिति में संरक्षण करने की बात करते हैं तो यहाँ सी.एस.आई.आर.– राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ मे भारत का पहला ऐसा मॉस हाउस है जो उष्णकटीबंधीय क्षेत्र मे बनाया गया है और इसमे कई रोचक, दुर्लभ, एवं संकटग्रस्त प्रजातियों को संरक्षित किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। यह मॉस हाउस लगभग 272 वर्ग फिट की जगह में है, जो की जाल से पूर्णतयः ढका है तथा इसमे मॉस के लिए अनुकूलित वातावरण बनाने हेतु मिस्ट, स्प्रिंकलर, पानी से भरे कैनाल की व्यवस्था की गई है, जिससे मॉस की वृद्धि उनके प्राकृतिक वास जैसी हो।

इसका उद्देश्य, महत्वपूर्ण प्रजातियों को अनुकूलित वातावरण में उगाना व वृद्धि करना, विद्यार्थियों और आम लोगों को इन पौधों के महत्व के बारे मे जानकारी देना है। जिससे इनका संरक्षण किया जा सके। यहाँ पर लिवरवर्ट एवं मॉस की लगभग 22 प्रजातियों को उनके अनुकूलित वातावरण में उगाया गया है। कुछ रोचक व महत्वपूर्ण प्रजातियों को इन विट्रो' तरीके से कल्चर हाउस में उगाया जाता है। इसके पश्चात इसे अनुकूलित वातावरण में ढाल कर मॉस हाउस में रोपित किया जाता है और इनका ध्यान रखा जाता है। यहाँ के मॉस हाउस के कुछ ब्रायोफाइट्स इस प्रकार है ।

- *मार्केन्शिया पैपिलाटा* उप प्रजाति *ग्रोसिबारबा*
- *मार्केन्शिया पॉलीमोर्फा*
- *प्लेजियोकाज्मा अपेंडिकुलेटम*
- *रिक्सिया बाइलार्डेरिआई*
- *बार्बूला इण्डिका*

मॉस गार्डेन बनाने हेतु ध्यान देने योग्य कुछ बातें

1.सही मॉस का चयन
दुनिया में मॉस की कुछ ऐसी प्रजातियाँ पायी जाती है जो संसार के हर भूभाग मे होती है, या उनसे संबधित प्रजातियाँ जिनकी भौगोलिक स्थिति अलग हो हम ऐसे मॉस का चयन कर सकते हैं। अनुकूलित वातावरण तथा मिट्टी के pH को संतुलित रख के कई प्रजतियों की बागवानी की जा सकती हैं। अधिकतर मॉस अम्लीय मृदा में अच्छी तरह से उगते हैं (मार्टिन 2015)।

बागवानी हेतु कुछ प्रजातियाँ (मार्टिन 2015)

- **एनोमोडोन रास्ट्रेटस** – ये पेड़ों के नीचे तनों पर उगते हैं यह विश्व भर में पाये जाते हैं। एशिया में इसकी नजदीकी प्रजाति *एनोमोडोंन लोंगिफोलियस* बागवानी हेतु प्रयुक्त होती है।

चित्र संख्या–2 : मॉस गार्डेन लिंगाधर (खुर्पाताल), नैनीताल, उत्तराखंड का परिदृश्य (फोटो– डॉ. शिवदत्त तिवारी, हल्द्वानी के सौजन्य से)

- ***एट्राइकम अगस्टेटम* तथा *एट्राइकम अंडूलेटम*–** मिट्टी की उत्पादकता तथा सूरज की रोशनी पर निर्भर करता है।
- ***ब्रायम अर्जेन्टियम* (सिल्वरमॉस)–** पथरीली तथा बलुई स्थानों पर उगते हैं।
- ***डाइक्रेनम स्कापरियम* (कुशन मॉस)** – विश्व भर में पाये जाते हैं तथा पेड़ों की नीचे छाल पर उगते है।
- ***फिसिडेंस ड्यूबियस* (पॉकेट मॉस)** – धारा तथा झरनों के पास प्राकृतिक रूप से उगते हैं।
- ***पोलीट्राइकम कम्युन*** (ब्लूमॉस)
- ***थ्युडीयम डेलीकेटुलम*** (डेलीकेटेड फ़र्न मॉस)

2. सही जगह का चयन

मॉस की बागवानी के लिये सही जगह की अगर बात की जाए तो जगह ढ़लान युक्त हो या उसे ढलानयुक्त बनाया जाए। छायादार जगह, जहाँ सूरज की धूप सीधे न आती हो या धूप पेड़ों की वितान से होकर आ रही हो। छायादार पेड़ों की बात करे तो मुख्यतः सदाबहार वृक्षों को वरीयता देनी चाहिए जिनके पत्ते पतझड़ में कम गिरते हों।

3. रोपण का सही समय

साल भर मौसम एक जैसा नहीं होता है इसलिए हमें मॉस रोपण हेतु सही समय की अवश्यकता होती है। जब वातावरण में प्रचुर मात्रा में नमी हो, ज्यादा गर्मी या बर्फबारी न हो रही हो, ऐसा मौसम मॉस रोपण हेतु उपयुक्त होता है।

4. रोपण एवं देखभाल

रोपण हेतु मॉस की व्यवस्था करने के लिए उन्हे पहचानना आवश्यक है, क्योंकि इनकी प्रजाति का पहचान करना कोई आसान काम नहीं है। जिनके पास प्रयोगशाला की व्यवस्था है वो इनके स्पोर के जरिये इन्हे उगाकर गार्डन में रोपण कर सकते हैं।

इसके अलावा हम जंगलों के नमीदार जगहों से लाकर भी इसे रोपित कर सकते हैं, हमें मॉस को किसी जगह से निकालने से पहले, ये देखना चाहिए की वो मॉस किसी संरक्षित जगह पर तो नहीं हैं। मॉस को रोपण के पश्चात उसे हल्के हाथों से शुरू के एक महीने तक दबाते रहना चाहिए तथा पानी प्रतिदिन देते रहना चाहिए जिससे की मॉस की पकड़ मिट्टी में मजबूत हो सकें।

गार्डेन में कई तरह के छोटे–मोटे जीव जैसे गिलहरी, चिड़िया आदि होते हैं तथा पतझड़ के पेड़ों से बचाने हेतु हम जाल का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा जंगली पौधे, केंचुए को हमेशा साफ करते रहना चाहिए वरना ये मॉस के वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

हमें इस बात का भी ध्यान रखना होता है की कुछ मॉस की प्रजातियाँ एक विशेष जगह पर बहुत तेजी से वृद्धि करती हैं तथा दूसरे प्रजातियों की वृद्धि को प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष

भारतवर्ष एक विशाल देश है और इसको कई पादप भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। जलवायु तथा पर्यावरण की दृष्टि से उपरोक्त हर क्षेत्र में विभिन्नता है और इसी कारण प्रत्येक क्षेत्र के पादपों में विविधता पायी जाती है। ब्रायोफाइटस बहुत सूक्ष्म और संवेदनशील पौधे होते हैं जिनको संरक्षण की आवश्यकता होती है। अतः प्रत्येक क्षेत्र के महत्वपूर्ण व विशेष महत्व वाले ब्रायोफाइटस को क्षेत्रीय, मॉस गार्डेन व मॉस हाउस बना कर उसमे संरक्षित करना चहिये।

संदर्भ सूची

ग्लाईम,जे.एम. (2007). इकोनामिक एंड एथनिक यूजेज़ ऑफ ब्रायोफाइटा : 14–41.

मार्टिन,एनी (2015). द मैजिकवर्ल्ड ऑफ मास गार्डेनिंग टिंबर प्रेस पोर्टलैंड, ओरेगॉन.

सक्सेना, डी.के.एवं हरिन्दर (2004) यूजेस ऑफ ब्रायोफाइटस : रेसोनेन्स : 56–65.

साहू, विनय, एवं अस्थाना, ए. के. (2013) लोक वानस्पतिक दृष्टि से ब्रायोफाइट पौधों का औषधीय महत्व : विज्ञानवाणी 110–112

किसी की गलत मंशाए आपको किनारे नही लगा सकती हैं

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

भारत के मुनस्यारी में विश्व का पहला 'लाइकेन उद्यान'

[1]संजीव नायक एवं [2]संजीव चतुर्वेदी
[1]वै.औ.अ.प.– राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ–226001
[2]अनुसंधान वृत उत्तराखंड, हल्द्वानी–263139

उत्तराखंड राज्य के वन विभाग की अनुसंधान शाखा ने पिथौरागढ़ जिले के मुनस्यारी में एक अनोखा लाइकेन उद्यान बनाया है। यह लाइकेन (पत्थर के फूल) को समर्पित दुनिया का अब तक पहला उद्यान है। यह मुनस्यारी हिमालय में 2,200 मीटर की उँचाई पर स्थित है। यहाँ लाइकेन की 300 से अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इसलिये यह उद्यान की स्थापना के लिए आदर्श स्थान है। मुनस्यारी एक हिल स्टेशन और लोकप्रिय पर्यटन स्थल है और अब लाइकेन उद्यान वहाँ एक नया आकर्षण होगा। लाइकेन शैवाल और कवक के सहजीवी सम्बन्ध से बना द्विजीवी है। ये आर्कटिक से लेकर अंटार्कटिका तक दुनिया के सभी जैवभौगोलिक क्षेत्रों मे उगते हुए पाये जाते हैं। आमतौर पर ये चट्टानों और पेड़ो के तनों पर सफेद और स्लेटी रंग के गोल चकत्तों के रूप में पाये

चित्र संख्या–1 : लाइकेन उद्यान का प्रवेश द्वार

चित्र संख्या–2 : मसालों के रूप में लाइकेन के उपयोग

जाते है। इनमें से कुछ पेड़ों पर लटके हुए होते हैं, तो कुछ चट्टानों पर रंग बिरंगी आकृतियों के रूप में फैले होते हैं। यहाँ तक कि, ये पत्तियों, मिट्टी, शीशा, प्लास्टिक, सीमेन्ट के प्लास्टर और धातुओं पर उग सकते हैं। दुनिया में लाइकेन की लगभग 20,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनमें से भारत में अभी तक 2900 प्रजातियाँ दर्ज की गयी हैं। भारत में पश्चिमी घाट और हिमालय लाइकेन की विविधता के प्रमुख स्थान माने जाते हैं। उत्तराखण्ड लाइकेन की दृष्टि से समृद्धतम राज्यों में से एक है। जहाँ 1,000 प्रजातियाँ मिलती हैं। मुनस्यारी के साथ–साथ अस्कोट, बागेश्वर, नैनीताल और पिथौरागढ़ जैसे अन्य क्षेत्रों में लाइकेन की 600 से ज्यादा प्रजातियाँ पायी जाती हैं। मुनस्यारी में स्थानीय बोली में लाइकेन को 'जुला' या 'पत्थर के फूल' कहते हैं। स्थानीय लोग लाइकेन को मसालों, हवन साम्रगी और औषधि के रूप में इस्तेमाल करते हैं। लाइकेन हैदराबादी बिरयानी, लखनऊ के गलावटी कबाब और चेट्टिनाड के व्यंजनों में खास तौर पर डाले जाते हैं। आदिवासियों द्वारा और आयुर्वेद में इनका औषधीय जड़ी–बूटी की तरह उपयोग किया जाता है। ये औषधीय रूप से महत्वपूर्ण जैव–अणुओं के महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। उत्तर प्रदेश के कन्नौज जिले में 'ओट्टो' या 'हिना' अतर नाम के खास इत्र को बनाने के लिए लाइकेन का इस्तेमाल किया जाता है। लाइकेन वायु प्रदूषण और सूक्ष्म जलवायु परिवर्तनों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। यह ठंडे तापमान, अधिक आर्द्रता वाले और प्रदूषण मुक्त इलाकों में प्रचुरता से पनपते हैं। इसलिये लाइकेन की प्रचुर वृद्धि के लिये मुनस्यारी बहुत उपयुक्त स्थान है। मुनस्यारी का लाइकेन उद्यान दो एकड़ क्षेत्रफल मे फैला हुआ है जिसमे लाइकेन की 80 प्रजातियाँ यहाँ नैसर्गिक रूप से उग रही हैं। यह पेड़ के तनों, टहनियों, चट्टानों और मिट्टी पर उगी हुई पायी जाती हैं। लाइकेन की

चित्र संख्या–3 : लाइकेन उद्यान में लगे विवरण पट्टिका

चित्र संख्या–4 : लाइकेन उद्यान में पत्थर पर उग रहा लाइकेन हेट्रोडर्मिया

विशेषज्ञों द्वारा पहचान कराके लाइकेन पर उचित लेबल लगाए गए हैं। अलग–अलग लाइकेन की विशेषताओं, उपयोग और महत्व के साथ उनके चित्र प्रदर्शित किए गए हैं। आगंतुकों को 'उद्यान' का भ्रमण कराने और लाइकेन के बारे में जानकारी देने के लिए गाइडों की नियुक्ति की गयी है। उद्यान का लक्ष्य महत्व और हिमालय की पारिस्थितिकी के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करना, स्थानीय लोगों की आजीविका को लाइकेन के साथ जोड़ना और उनके शोषण पर रोक लगाना है। लाइकेन उद्यान शिक्षा एवं शोध के केन्द्र और लाइकेन की समशीतोष्ण प्रजातियों के संरक्षण का काम भी करेगा। इस उद्यान को 27 जून 2020 को आगतुकों के लिए खोल दिया गया है।

कठिन समय में
सत्य
की सबसे अधिक जरूरत
होती है

– रविन्द्रनाथ टैगोर

इम्पेसिएंस बालसामिना : बहुउद्देशीय पौधे पर संक्षिप्त परिचय

दीक्षा कुमारी एवं बिक्रमा सिंह
विज्ञान और अभिनव अनुसंधान अकादमी, गाजियाबाद–201002
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

बालसमिनेसी द्विबीजपत्री पौधों का एक परिवार है, जिसमें दो वंश के पौधे शामिल हैं। *इम्पेसिएंस*, जिसमें एक हजार से अधिक प्रजातियां शामिल हैं और *हाइड्रोसेरा*, जिसमें केवल एक प्रजाति शामिल है। यह फूल वाले पौधे वार्षिक या सदाबहार होते हैं और यह पूरे समशीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जिसमें मुख्यतः एशिया और अफ्रीका महाद्वीप हैं। *इम्पेसिएंस* के फूल बहुत ही नाजुक

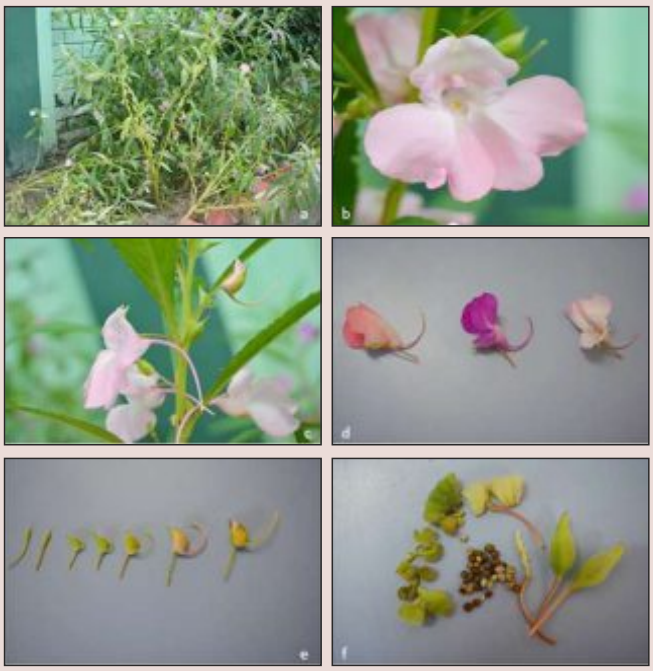

चित्र संख्या–1 : (a) प्राकृतिक वास (b) फूल के सामने के दृश्य (c) फूल का पार्श्व दृश्य (d) *इम्पेसिएंस बालसामिना* के विभिन्न रंगों के फूल (e) कली खुलने के चरण (f) कैप्सूल और बीज

और पंचकोणीय होते हैं। पुष्प के कोरोला भाग में पाँच पंखुडिया होती हैं : ऊपरी स्थित पंखुडी बड़ी होती हैं जिन्हे पृष्ठीय पंखुड़ी के रूप में जाना जाता है और चार पार्श्व वाले, जो फूल के बाईं और दाईं ओर जोड़े में होती है, कुछ हद तक इन्हें हम पार्श्व संयुक्त पंखुडी कहते हैं। फूल हमेशा जाइगोमोर्फिक (सममिति का केवल एक तल होना) होते है और जाइगोमॉर्फी को पेडीकल (रेसुपिनेशन) के 180° घुमा द्वारा वर्णित किया जा सकता है, जिसके कारण पर्श्व सीपल को अपाक्ष रूप से तैनात किया जाता है, जिसे अपेक्षाकृत अमृत–उत्पादक स्पर के विकास के लिए अधिक अनुकूल माना जाता है।

वर्गीकरण विवरण

इम्पेसिएंस बालसामिना, जिसे आमतौर पर बालसम, गार्डन बालसम, टच–मी–नॉट या स्पॉटेड स्नैपवीड के रूप में जाना जाता है। यह भारत और म्यांमार के मूल निवासी पौधे की एक प्रजाति है। इसकी व्यापक रूप से एक सजावटी पौधे के रूप में खेती की जाती है। यह एक वार्षिक रसीला जड़ी–बूटी है, जो 100 से.मी. तक लंबी, सरल या शाखित, युवा, निचली गांठों में सूजन होने पर चमकदार यौवन जैसा दिखता है। पत्तियाँ वैकल्पिक, पेटिओल, 1.0–3.0 से.मी., स्टिप्यूल पेरेंटेंट, ब्लेड लैंसोलेट, 4.0–12.0 से.मी. लंबी और 1.5–3.0 से.मी. चौड़ी, दोनों सतहें चमकदार, नसें 4–7 जोड़े, एपेक्स एक्यूमिनेट मार्जिन गहरा दांतेदार। पुष्पक्रम 1–3 फूल, पत्ती की धुरी में पेडन्यूल्स के बिना, पेडीकल्स 2.0–2.5 सेमी., घनी यौवन, आधार पर ब्रैक्ट, रेखिक ब्रैक्ट्स। फूल गुलाबी, लाल, बैगनी या सफेद, साधारण या डबल पंखुड़ी वाले होते हैं। पार्श्व बाह्यदल 2, अंडाकार या अंडाकार–लांसंलेट, 2–3 एम.एम.। निचला सीपल, नाविक, यौवन, एक घुमावदार स्पर में संकुचित, स्पर 1. 0–2.0 से.मी. घने टोमेंटोज, दोनो सिरों पर संकुचित, कई बीज, काले भूरे, गोलाकार, 15.3–3.0 एम.एम. व्यास के और टयूबरकुलेट होते है। वे मधुमक्खियों और अन्य कीड़ों तथा अमृत–पोषक पक्षियों द्वारा भी परागित होते हैं। पके बीज के कैप्सूल विस्फोटक विक्षोभ से गुजरते हैं।

फूल और फल आने का समय

भारत में, इस पौधे में अधिकतर फूल और फल मार्च से अक्टूबर महीने के बीच में आते हैं, वही चीन में यह जुलाई से अक्टूबर में फूलता और फलता है।

पारिस्थितिकी

इम्पेसिएंस बालसामिना अच्छी तरह से सूखा लेकिन नम मिट्टी पर पूर्ण सूर्य की छाया में सबसे अच्छा बढ़ता है। यह 5. 6–7.5 की सीमा में पीएच के साथ मिट्टी, रेतीली और दोमट मिट्टी सहित कई प्रकार की मिट्टी पर उगाया जा सकता है। अंकुरण में लगभग 8 से 14 दिन लगते हैं। अंकुरण के लिए इष्टतम तापमान 25–28°C है, और रोपाई के लिए रात के तापमान में लगभग 20°C की आवश्यकता होती है।

प्रजनन जीव विज्ञान

इम्पेसिएंस बालसामिना के फूल उभयलिंगी होते हैं। जैसे ही एंथेर की दीवारें टूट जाती हैं और पीछे हट जाती हैं, उत्पादित सेल्यूलोज धागे खुले पराग को एक जाली में पकड़ लेते हैं, जिससे परागण करने वाले कीट इसे एकत्र कर सकते हैं।

रसायनिक घटक

फाइटोकेमिकल जांच ने ट्राइटरपेनॉइड सैपोनिन, क्यूमरिन किनोन, फलेवोनोइड्स और फेनोलिक यौगिकों जैसे कि

टेट्राहाइड्रोनाफ्लथेलीन, ग्लूकोपाइरानोसाइड, निकोटिफ्लोरिन, पी–हाइड्रॉक्सीबेन्जोइक एसिड, एमिरिन, एरिथ्रोडियोल, स्पिनस्टेरोल, ऑक्सोलूपियोल, ल्यूपेनोन, ल्यूपोल के अलगाव की सूचना दी है। इस संयंत्र पर 1,4. नेफ्थोकिनोन डेरिवेटिव ने विभिन्न प्रकार के औषधीय प्रभाव दिखाए जैसे कि एंटीट्यूमर, एंटी–इंफ्लेमेटरी, और हेपेटोप्रोटेक्टिव गतिविधियाँ, एंटी–प्रोलिफेरेटिव गतिविधि और एंटी–न्यूरोइंफ्लेमेटरी। *बालसामिना* की सफेद पंखुडी की फाइटोकेमिकल जांच के परिणामस्वरूप विरोधी न्यूरोडीजेनेरेटिव बिफ्लेविनोइड ग्लाइकोसाइड और विरोधी भड़काऊ फेनोलिक यौगिकों का अलगाव किया गया है।

उपयोग

इम्पेसिएंस बालसामिना के विभिन्न भागों का उपयोग त्वचा रोगों के लिए पारंपरिक उपचार के रूप में किया जाता है।

- बाल, नाखून, हाथ और पैरों की पारम्परिक रंगाई के लिए अक्सर पूरे एशिया में फूलों और पत्तियों का उपयोग किया जाता है। कोरिया में, फूलों को कुचल कर फिटकरी के साथ मिलाकर एक नारंगी रंग बनाया जाता है, जिसका उपयोग नाखूनों को डाई करने के लिए किया जाता है और ये सामान्य नेल वार्निश के विपरीत, डाई अर्ध–स्थायी है।
- रक्त परिसंचरण को बढ़ावा देने, दर्द और गले में दर्द से राहत के लिए पारम्परिक एशियाई दवाओं में बीज, तने और पत्तों को उपयोग किया जाता है।
- फूलों का उपयोग लूम्बेगो, जलन और पपड़ी के उपचार के रूप में किया गया है, जबकि इसके उपरी भागों का उपयोग आर्टिकुलर गठिया, फोड़े और ट्यूमर के इलाज के लिए किया गया है।
- पत्तों के रस का उपयोग मस्सों और सर्पदंश के इलाज के लिए किया जाता है।
- *इम्पेसिएंस बालसामिना* का उपयोग कब्ज और जठरशोथ के उपचार के लिए भी किया जाता है। चीनी लोग इस पौधे का इस्तेमाल सांपो द्वारा काटे जाने पर या जहरीली मछली खाने वालों के इलाज मे लिए भी करते हैं।
- इसके अलावा *इम्पेसिएंस बालसामिना* का उपयोग चीनी दवा के रूप में कैंसर विरोधी जड़ी बूटी के इलाज के लिए किया गया है, इसका उपयोग स्क्रोफुलोसिस, कार्बुनकल और पेचिस के उपचार के लिए एक कोरियाई पारंपरिक दवा के रूप में भी किया जाने लगा है।
- इस प्रजातियों के बीज फली के अर्क विशेष रूप से, हेलिकोबैक्टर पाइलोरी के एंटीबायोटिक–प्रतिरोधी उपभेदों के खिलाफ सक्रिय होते हैं। यह 5– रिडक्टेस, एंजाइम का अवरोधक भी है जो टेस्टोस्टेरोन को डायहाइड्रोटेस्टो स्टेरोन (टेस्टोस्टेरोन का सक्रिय रूप) में परिवर्तित करता है, इस प्रकार हमारे शरीर में टेस्टोस्टेरोन की क्रिया को कम करने में *इम्पेसिएंस बालसामिना* का अधिक उपयोग है।

अतः हम कह सकते हैं कि *इम्पेसिएंस बालसामिना* में कई सक्रिय घटक होते हैं जो कई बीमारियों के इलाज में उपयोगी होते हैं और विभिन्न देशों में इसके उपयोग भी अलग–अलग तरह से होते हैं। वैज्ञानिकगण इसके अधिक उपयोग खोजने के लिए विभिन्न प्रकार के अध्ययन कर रहे हैं। *इम्पेसिएंस बालसामिना* बहुत आसानी से उगाया जा सकता है, ताकि बगीचे की सुंदरता के साथ–साथ कई बीमारियों के घरेलू उपचार के रूप में भी उपयोग किया जा सके । आज के इस दौर में नई वैज्ञानिक तकनीकी की जरूरत है जिससे *इम्पेसिएंस बालसामिना* का उपयोग अधिक मात्रा में किया जा सके।

ईमानदारी और बुद्धिमानी के
साथ किया हुआ काम कभी
व्यर्थ नही जाता

–हजारी प्रसाद द्विवेदी

बाँस : हरा सोना

भरत लाल मीना, विवेक श्रीवास्तव एवं मनीष एस भोयर
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

बाँस, पोएसी कुल का एक अत्यंत उपयोगी सदस्य है, जो विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता है। बाँस एक सामूहिक शब्द है, जिसमे अनेक प्रजातियाँ सम्मिलित हैं। करीब 1500 बाँस की प्रजातियाँ दुनिया भर में पाई जाती हैं। हमारे देश में बाँस की लगभग 136 प्रजातियाँ मौजूद हैं। इनमें से कुछ ही व्यावसायिक रूप से अधिक उपयोगी हैं। जिसमें मुख्य प्रजातियाँ *बैब्यूसा अरंडिनेसी, बैंब्यूसा स्पायनोसा, बैंब्यूसा टूल्ला, बैंब्यूसा वलगैरिस, डेंड्रोकैलैमस, बैंब्यूसा नूटैंस* तथा *मैलोकेना* है।

बाँस एक बहुमुखी, मजबूत नवीकरणीय पर्यावरण के अनुकूल पादप है जिसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए आसानी से उगाया जा सकता है। बाँस को पृथ्वी पर सबसे तेजी से बढ़ने वाला पौधा भी माना जाता है। चीन के बाद भारत दुनिया में बाँस का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश हैं। भारत में बाँस का वार्षिक उत्पादन लगभग 3.23 मिलियन टन होने का अनुमान हैं। इसका उपयोग लकड़ी के विकल्प के रूप में किया जाता है। इसको मुख्य रूप से निर्माण सामग्री, फर्नीचर, लुगदी और प्लाईवुड के रूप में उपयोग किया जाता हैं। इसके अलावा, बाँस की टहनियों का सेवन भोजन के रूप में किया जाता है जिसे पोषण का अच्छा स्रोत माना जाता है।

भारत सरकार ने गैर वन क्षेत्रों में बाँस की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाये हैं भारतीय वन (संशोधन) नियम, 2017 के तहत गैर वन क्षेत्रों में उगाए गये बाँस के पेड़ को वृक्ष की परिभाषा के दायरे में लाए जाने से छूट मिली है। इसके आर्थिक एवं व्यावसायिक उपयोग के लिए काटने/पारगमन परमिट की आवश्यकता से छूट प्रदान की गयी है। इस संशोधन के पहले, किसी वन एवं गैर वन भूमि पर उगाए गए बाँस को काटने/पारगमन पर भारतीय वन अधिनियम, 1927 के प्रावधान लागू होते थे । किसानों द्वारा गैर वन भूमि पर बाँस की खेती करने की राह मे यह एक बड़ी बाधा थी। इस संशोधन का एक बड़ा उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाने तथा देश के हरित क्षेत्र में बढ़ोतरी करने व किसानों की आय के दोहरे लक्ष्य को हासिल करने के लिए गैर वन क्षेत्रों मे बाँस की खेती को प्रोत्साहित करना है।

बाँस की व्यावसायिक खेती को बढ़ावा देकर एवं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहित कर किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जा सकता है तथा इसे संबंधित लघु एवं कुटीर उद्योग को भी बढ़ावा मिलेगा जिसे देश की आर्थिक स्थिति में भी सुधार संभव है।

बाँस सभी प्रकार की जलवायु एवं चट्टानी मिट्टी को छोड़कर विभिन्न प्रकार मिट्टी, जिसका पीएच रेंज 4.5 से 6.0 हो, उसमें आसानी से लगाया और उगाया जा सकता है। उच्च गुणवत्ता और सर्वोत्तम उपज के लिए उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है। इसकी खेती के लिए ज्यादा श्रम एवं मेहनत की भी जरूरत नही होती है, तथा इसमें कोई कीट और कीट रोग की संभावना भी बहुत कम रहती है, जिससे कीटनाशक और उर्वरक की बहुत कम लागत आती है। जिससे किसानों को अच्छी आय मिलती है।

बाँस को गंभीर रूप से खराब हुए स्थलों और बंजर भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए भी लगाया जा सकता है। यह अपने अजीबो–गरीब झुरमुट गठन और रेशेदार जड़ प्रणाली के कारण अच्छा मिट्टी बाँधने वाला है। इसलिए मिट्टी और जल संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसमे ज्यादा सिंचाई करनी की आवश्यकता नहीं होती है। आम तौर पर, बाँस को कल्म्स कटिंग या राइजोम/प्रकंद रोपण विधि के माध्यम से उगाया जाता है। इन्हे बीजों से भी बढ़ाया जा सकता है।

बाँस रोपण के बाद उत्पाद लेने की समय–अवधि 4–5 वर्ष है। इसलिये अंतर स्थान का उपयोग पहले 3 वर्षों के दौरान अदरक, मिर्च या हल्दी जैसी अंतर फसलें उगाकर कुछ अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए किया जा सकता है। कटाई पांचवे वर्ष से शुरू की सकती है।

बाँस के बागान से उपज और आय पाँचवे वर्ष से शुरू होकर हर साल बढ़ती जाती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि बाँस एक नकदी फसल है जिसमें कम समय–अवधि होती है, तेजी से विकास होता है और आर्थिक आवर्ती रिटर्न, पीढ़ी दर पीढ़ी देता रहता है। बाँस को हर साल रिप्लांटेशन करने की जरूरत नही है, यह लगभग 35–40 साल तक हम इसकी उपज ले सकते हैं।

बांस की लकड़ी का व्यावसायिक उपयोग :

- बाँस सबसे तेजी से बढ़ने वाला और सबसे अधिक उपज देने वाला पौधा है। यह किसानों के लिए आजीविका का एक अच्छा स्रोत है। वर्तमान समय में इसका उपयोग लुगदी और कागज, निर्माण और इंजीनियरिंग सामग्री, स्वास्थ्य, भोजन तथा बाँस की लकड़ी का इस्तेमाल हर जगह घर निर्माण से लेकर, कलात्मक कार्य, डिजाइन, खिलौने बनाने, हस्तशिल्प आदि के लिए औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जा रहा है।
- इसका तना बहुउपयोगी होता है। बाँस के तने से लकड़ी के मकान एवं पुल भी बनाये जाते हैं।
- बाँस की लकड़ी से कागज भी बनाया जाता है, कागज का इस्तेमाल स्कूल से लेकर सभी सरकारी व गैर–सरकारी ऑफिस/कार्यालय मे किया जाता है।

- कई प्रकार के घरेलू फर्नीचर बाँस की लकड़ी से बनते हैं जैसे– टेबल, कुर्सी, तथा फैंसी आइटम।
- बाग बगीचों मे सौंदर्यीकरण के लिए भी बाँस का पौधा लगाया जाता है। यह पौधा तेजी से विकास करता है और दिखने में सुन्दर होता है। यही मुख्य कारण है कि "बाँस" बगीचे की शोभा बढ़ाता है।
- बाँस के फूल चावल के दाने के बराबर फलों में विकसित होते हैं। दुनिया के कई इलाकों में बाँस के चावलों को खाया भी जाता है। खासकर भारत और चीन में इन्हें खाते हैं।
- बाँस की लकड़ी काफी ज्यादा मजबूत होती है। बाँस की लकड़ी में लचीलेपन का गुण होता है जिससे वह लोड पड़ने पर मुड़ जाता है लेकिन टूटता नहीं है। इसी गुण के कारण बाँस की लकड़ी के खिलौने, टूथ ब्रश इत्यादि बनाये जाते हैं।
- बम्बू ट्री से कई वाहनों के पट्टे एवं ढाँचा तैयार किये जाते हैं, इस की लकड़ी से साईकिल भी बनाई जाती है।
- मीठे बाँस को खाया भी जाता है। इस बाँस का अचार इत्यादि बनाया जाता है। वैसे बम्बू में जहरीले टोक्सिन होते हैं, इस कारण मीठे बाँस को अधिक तापमान पर उबालना जरूरी है।

भारत सरकार द्वारा बाँस की खेती को व्यावसायिक एवं बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने के लिए चलायी जा रही योजनाये :–

- ''राष्ट्रीय बाँस मिशन'' इस मिशन के तहत बाँस की खेती को बढ़ावा देने और किसानों की मदद के लिए केंद्र सरकार प्रति पौधा 50 प्रतिशत सब्सिडी प्रदान करती है।
- सरकार न सिर्फ किसानों को बाँस की खेती के लिए मदद दे रही है बल्कि उससे जुड़े लघु तथा कुटीर उद्योगों के लिए भी अनुदान भी दिया जा रहा है,
- ''राष्ट्रीय बाँस मिशन'' और सरकारी ई–मार्केटप्लस (GeM) ने बाँस की वस्तुओं और सेवाओं (बाँस आधारित उत्पादों और गुणवत्ता) को बढ़ावा देने के लिए (GeM) पोर्टल (https://gem.gov.in/) पर स्थान दिया है।

निष्कर्ष :

बाँस की खेती किसानों के लिए हरा सोना साबित हो रही है। इसकी खेती अर्थशास्त्र का नियम कम लागत, अधिकतम लाभ पर खरी उतरती है। इसके साथ ही यह केन्द्र सरकार की योजना किसानों की आय दुगनी करने में भी मददगार हैं। बाँस के पौधे के लिये कोई खास भूमि एवं जलवायु की जरूरत नहीं पड़ती है। यह सभी प्रकार की भूमि में लगाया जा सकता है, जिससे बंजर भूमि का प्रबन्ध किया जा सकता है। बाँस सबसे तेजी से बढ़ने वाला और सबसे अधिक उपज देने वाला पौधा हैं। वर्तमान समय में इसका उपयोग लुगदी और कागज निर्माण और इंजीनियरिंग सामग्री, स्वास्थ्य, भोजन, बाँस की लकड़ी का इस्तेमाल हर जगह घर निर्माण से लेकर, कलात्मक कार्य, डिजाइन, खिलौने बनाने, हस्तशिल्प आदि के लिए औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जा रहा है। साथ ही बाँस किसानों की आय तथा देश का सकल घरेलू उत्पाद बढ़ाने मे अहम भूमिका निभा सकता है।

जब तक जीवन है
सीखते रहो क्योंकि
अनुभव ही सबसे श्रेष्ठ शिक्षक है

–स्वामी विवेकानन्द

पेड़ पौधों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण का निदान

राजीव कुमार, शंकर वर्मा एवं एस.के. तिवारी
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पिछले कई दशकों से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का प्रकोप लगातार बढ़ता जा रहा है। मानव जीवन ही नहीं बल्कि सभी जीवधारियों के लिए यह प्रदूषित वातावरण कष्टदायक एवं घातक सिद्ध हो रहा है। भारतीय संस्कृति व वैदिक संहिता में पर्यावरण संतुलन करना अत्यन्त आवश्यक है। आज के समय में पर्यावरण प्रदूषण को रोकने का प्रयास कम हो रहा है। जन साधारण से लेकर उच्च वर्ग तक के शहरी जीवन तथा कस्बों में पर्यावरण प्रदूषण विशेष रूप से बढ़ता जा रहा है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की बीमारियाँ मनुष्य के स्वास्थ्य को नष्ट कर रही हैं। गौरतलब है कि छोटे युवा व वृद्ध बुजुर्गों में अनेक प्रकार के शारीरिक संक्रमण वाले रोग, नेत्ररोग, मानसिक तनाव, रक्त की कमी, इम्यूनिटी, मोटापा आदि समस्यायें बढ़ती जा रही हैं। इन स्वास्थ सम्बन्धी समस्याओं का एक विशेष कारण प्राकृतिक वन सम्पदा का अत्यधिक दोहन करना है, जिससे उत्पन्न प्राकृतिक असंतुलन के कारण प्रदूषण एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है। इतना ही नहीं वातावरण में धुआँ, कार्बन, कार्बन डाई आक्साइड, विषाक्त गैसें तथा अनावश्यक लवणों की मात्रा की अधिकता के कारण स्वस्थ प्राणवायु की कमी लगातार बढ़ती जा रही है। अच्छा पर्यावरण बनाना मानव समाज का परम कर्तव्य है, जिसे विभिन्न प्रकार के उपयुक्त वृक्षों, सदा हरे–भरे रहने वाले पौधों व पुष्पीय से, गृह सज्जा में सुन्दरीकरण के शोभाकार व फूल वाले पौधों को लगाकर, सुन्दर बनाना चाहिए। सड़कों के किनारे, सड़कों के बीच की पट्टी में, गलियों में, चौराहों में, ऊँची–नीची सभी प्रकार की जमींन पर उपयुक्त पौधे/वृक्ष लगाना चाहिए और उनका आवश्यक समय पर पोषण व रख–रखाव करते रहना चहिए, जिससे पर्यावरण स्वास्थ्यवर्धक, सुखदायक व सुहावना बन सके। आजकल के आधुनिक युग में मनुष्य बहुमंजिली इमारतों में अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं जबकि इनमें भौतिक उपयोग की वस्तुओं से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है जिसे शोभाकारी व पुष्पीय पौधों, विण्डो गार्डनिंग, वाल गार्डनिंग, बाटल गार्डनिंग, बोन्साई आदि से अच्छा व स्वास्थ्य–वर्धक बनाया जा सकता है। पौधरोपण के लिए स्थान व उसकी बनावट को देखते हुए प्रजातियों का चयन करना अति आवश्यक है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पर्यावरण के सुन्दरीकरण एवं प्रदूषण नियंत्रण में उपयोगी पौधों को ही चयनित किया जाए।

चित्र संख्या–1 : डिवाइडर पर *बोगेनवीलिया*

प्रदूषण नियंत्रण के लिए स्थान विशेष में, पौधों की उपयोगिता

1. सड़कों के दोनों तरफ पौध रोपण : सड़कें यातायात के आवागमन का मुख्य स्थान है, जिन पर अनेकों प्रकार के वाहनों का निरन्तर आवागमन होता रहता है। शहरों के अन्दर एवं हाईवे पर सड़कों के दोनों तरफ तथा बीच की पट्टिका पर पौध–रोपण करके काफी हद तक प्रदूषण–नियंत्रण किया जा सकता है। सड़कों के किनारे, धुआँ, धूल तथा ध्वनि प्रदूषण को ध्यान में रखकर तथा पौधे की ऊँचाई व फैलाव को देखते हुए उनका चयन करना चाहिए।

इन स्थानों पर पौधे लगाने के लिए वहाँ के वातावरण व भूमि को देखते हुए, सदा हरे रहने वाले या पतझड़ वाले पौधों को उनकी ऊँचाई, फैलाव, पत्तियों व पुष्पों के आकर्षक तथा विशेष तौर पर वायु व ध्वनि प्रदूषण रोकने वाले पौधों को प्राथमिकता देनी चाहिए। इन सड़कों के लिए *सीजलपीनिया*, बोतल ब्रुश, अमलतास, मोलश्री, अशोक, अशोक 'पेन्डूला,' *कैसिया सियामिया, डलर्बिजिया लैबेक, अकेसिया ऑरीकुलीफार्मिस,* चितवन *(एल्सटोनिया स्कालोरिस)*, कचनार, अर्जुन, *टर्मिनेलिया* मुलेराई, शागोन, लाल व पीला गोल्डमोहर, बरगद की प्रजातियाँ, सावनी *(लैजस्ट्रोमिया)* आदि प्रमुख है।

2 फ्लाईओवर : आजकल फ्लाईओवर शहरों, कस्बों में तथा रेलवे ट्रैक पर बनाये गये हैं, इनके अगल–बगल, छायादार जगहों पर छोटे पौधे लगाने चाहिए जिससे रेल तथा वाहनों से उत्पन्न धुआँ का प्रदूषण दूर हो सके। इन स्थानों में *सेन्सवेरिया, पॉम, बोगेनवेलिया, डयूरेन्टा अमेराई, एकलिफा विकेसियाना, लेन्टाना, ड्रेसिना,* कनेर, गुड़हल, छोटी–कचनार लगाये जा सकते हैं।

3. सड़क मध्य पट्टिका : सड़क मध्य में खाली पट्टिका में ऐसे पौधे लगाने चाहिए जो सड़क के धुएं, धूल आदि का अवशोषण करके प्रदूषण का नियंत्रण कर सकें। इसलिए फाइकस लॉंग आइसलैण्ड, *मालपीजिया गैलेब्रा, माल्पीजिया कॉक्सीजेरा, टिकोमा स्टांस, मुराया पैनीकुलाटा, हेमेलिया पेटेन्स, थिबेटिया नेरीफोलिया, ड्यूरेन्टा, प्लूमेरिया, एकलीफा विकेसियाना, बोगेनविलया* (लेडी मेरी बॉरिंग, एच0सी0 बक, जुलू क्वीन, मेरी पॉमर, मेरी पॉमर स्पेशल), *विनिका रोजिया, जैट्रोफा पेन्डुरीफोलिया* आदि के स्वस्थ पौधे लगाने चाहिए।

चित्र संख्या–2 : ट्रैफिक आइलैण्ड पर पौधे

4. ट्रैफिक आइलैण्ड : कई सड़कों के मिलने के स्थान पर सरकिल होते हैं इनके बीच का ऊँचा भाग यानी टीला होता है उस स्थान पर घास के साथ किनारे की क्यारियों में अलग–अलग प्रकार के पौधे जैसे *एकलिफा* प्रजाति, *फाइकस बेंजामिना, रूसेलिया जन्सिया, रूसेलिया ईक्यूसटीफोलिया, एक्जोरा* प्रजाति, गुडहल प्रजाति, *लैन्टाना डिप्रेसा, विनिका रोजिया, बोगेनबिलिया* की किस्में, रात की रानी, सदासुहागन, डयूरेन्टा आदि के पौधे चुनने चाहिए।

5. हरित–पट्टिका : प्रदूषण सहनशील वृक्ष व झाड़ियों का रोपण करके हरित पट्टिका (ग्रीनबेल्ट) को एक लम्बे समय के लिए तैयार किया जाता है। इसमें लगे हुए वृक्ष व झाड़ियाँ, प्रदूषण का सदैव अवशोषण करते रहते हैं। इसके लिए साल, शीशम, *अकेसिया आरीकुलीफारमिस,* कचनार, *केसिया सियामिया, पौंगामिया ग्लैब्रा,* बरगद की प्रजातियाँ *(फाइकस बेंगालेन्सिस, फाइकस इनफेक्टोरिया, फाइकस बेंजामिना नूडा),* सावनी, मनोकामनी, अशोक, कनेर, पुत्रंजीवा, अर्जुन, सीता अशोक आदि पौधों का चयन करना चाहिए।

औद्योगिक एरिया के आस–पास : औद्योगिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कारखानों से हानिकारक धुआँ, रासायनिक गैसें, हवा में कार्बनिक कणों की धूल, दूषित वायु की अधिकता रहती है। इन स्थानों पर पौधों को लगाकर कुछ हद तक प्रदूषण को कम करके स्वस्थ वातावरण बनाया जा सकता है। ऐसे स्थानों में नीम, कचनार, बकैन, पुत्रंजीवा, बरगद की प्रजातियाँ, अशोक, *बोगेनविलिया* की किस्में आदि का पौधरोपण करना चाहिये।

6. पार्क तथा उसके विभिन्न स्थानों में : बड़े शहरों व कस्बों में टहलने, घूमने, बैठने एवं दर्शनीय स्थान देखने के लिए जनता शुद्ध वातावरण ढूँढ़ती है। ऐसे स्थानों में गुलाब, केली, चाँदनी, गुड़हल, मोरपंखी, *क्रोसेन्ड्रा* प्रजाति, *बेलापुरेन* प्रजाति, बेला, मौसमी पौधे आदि की विभिन्न किस्मों को क्यारियाँ व लॉन के किनारे लगाया जा सकता है। सुगन्धित व पुष्पीय पौधों के रोपण से पार्क व दर्शनीय स्थलों की शोभा बढ़ती है व प्रदूषण मुक्त पर्यावरण बनता है।

7. नव विकसित रिहायशी कालोनियों व उनके आस–पास : नव विकसित आवासीय कालोनियों को सुनियोजित तरीके से पौध रोपण करके सुन्दर व स्वस्थ वातावरण से युक्त बनाया जा सकता है। सुन्दरीकरण के लिए विभिन्न शोभाकारी किस्मों का रोपित करना चाहिए इसके लिए अशोक, गोल्डमोहर, अमलतास, *फाइकस लाँगआइसलैन्ड, बोगेनविलिया, टिबूबिया पामेराई, जैकरान्ड़ा कस्पीडीफोलिया, टिकोमा स्टान्स,* गन्धराज, कनेर, पॉम आदि शोभाकारी पौधों को लगाना चाहिए।

8. मल्टीस्टोरी कम्पाउण्ड के आस–पास : आजकल बहुमंजली फ्लैट्स का युग है, इनमें कम जगह तथा बन्द क्षेत्र होने से प्रदूषण बढ़ रहा है। प्रकाश, शुद्ध वायु न मिलने से प्रदूषित वातावरण रहता है। इससे बच्चों व वृद्धों में रोग, कमजोरी, रूगण्ता, तनाव व सहन शक्ति की कमी आदि की समस्यायें बढ़ती जा रही हैं। मल्टीस्टोरी कम्पाउण्ड में पौधे लगाने के लिए स्थान के अभाव के कारण हम दीवारों के सहारे लम्बवत् दिशा में वाटिका तैयार करते हैं उसे वर्टिकल गार्डन कहते हैं। इसके लिए दीवारों पर या उससे सटे लोहे या सीमेंट के विभिन्न आकारों वाली सीढ़ियों या अलमारियों को आधार बनाकर अथवा मोटे कपड़े / जीन्स के थैलों में अपनी पसन्द के

चित्र संख्या– 3 : सड़क के डिवाइडर पर लगे हुये पौधे

पौधे लगााकर दीवारों पर लटकाते हैं, जिससे दीवार का हिस्सा पौधों से ढ़क जाता है व केवल पौधे और फूल ही दिखाई पड़ते हैं। वर्टिकल गार्डन के लिए उसका स्थान एवं प्रकाश की उपलब्धता के अनुसार पौधों का चयन किया जाता है। जिसमें गृह–सज्जा एवं फूलों के पौधों को लगाया जा सकता है। जिनमें से कुछ पौधों की सूची निम्नलिखित है।

गृह सज्जा वाले पौधे : *एग्लोनिमा, कैलेथिया, कैलेसिया, क्लोरोफाइटम, कोलियस, इपीप्रीमिनम,* गोल्डन डुरंटा, रोहियो, शैफलेरा, *सिटक्रेसिया, ड्रेसिना, पॉलीसियास, बड़ेलिया* एवं *कोड़ियम* प्रजातियाँ इत्यादि।

कैक्टस एंव सैकुलेन्ट : *कोलियस एरोमेटिका, पेड़िलेन्थस, केलेसिया, सीड़म, कैलनकोय, कॉटीलीड़न आरवीकुलेटा, सेन्सवेरिया, एगेव* प्रजातियाँ, *पोर्चुलाका अफरा, ओपेन्सिया* प्रजातियाँ इत्यादि।

फर्न : *ऐड़िऐन्टम कैपिलिस, ऐड़िऐन्टम काउड़ेटम* एवं *नेफ्रोलिपस* प्रजातियाँ इत्यादि।

मौसमी पौधे : गेंदा, कैलेन्डुला, एस्टर, *साल्विया, सिनरेरिया, नस्टरसियम, ड़ायन्थस, फलाक्स,* गुलदाउदी, पेंजीं, *बरबीना,* गैलारड़िया, ड़ेजी, *गम्फरैना, पिटूनिया* प्रजातियाँ इत्यादि।

गुड़मार की उन्नत खेती

मोहन सिंह, जे.एन. तिवारी, अवनीश कुमार, राकेश चन्द्र नैनवाल एवं देवेंद्र सिंह
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

विश्व में पाये जाने वाले अनेकों बहुमूल्य औषधीय पौधों में गुड़मार एक बहुपयोगी औषधीय पौधा है। यह एपोसाइनेसी कुल का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम *जिमनिमा सिलवेस्टर* है। गुड़मार पर पीले रंग के गुच्छेनुमा फूल अगस्त–सितम्बर माह में खिलते हैं। गुड़मार के फल लगभग 2 इंच लम्बे एवं कठोर होते हैं तथा बीज छोटे एवं काले–भूरे रंग के होते हैं। गुड़मार के पत्ते तथा जड़ का औषधीय रुप में उपयोग किया जाता है। मुख्य रूप से इसका उपयोग मधुमेह नियंत्रण की औषधि को बनाने के लिए किया जाता है। यह मुख्यतः अफ्रीका, एशिया और मलेशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, केरल, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु और बिहार के जंगलों में यह पाया जाता है। यह मध्यप्रदेश के जबलपुर, सतना, होशंगाबाद, रीवा, दमोह, बिलासपुर, और छतरपुर में पाया जाता है। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में भारी माँग के चलते, भारत विशेष कर तमिलनाडु में इसकी खेती के विस्तार से किसानों की आय में वृद्धि हो रही है। गुड़मार उष्णकटिबंधीय जलवायु में पाये जाने वाला पौधा है जो उच्च या मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में उत्साह जनक वृद्धि के लिए उपयुक्त हैं। लगभग सभी भारतीय प्रणाली में इसकी लताओं का उपयोग खांसी, अल्सर और आंखों में दर्द के दवाओं के रुप में किया जाता है। यह सूजन, अपचयन, कब्ज, पीलिया आदि में भी उपयोगी है। इसकी जड़ों को सांप के विष को कम करने के लिए लेप के रुप में उपयोग किया जाता है। पौधों की पत्तियों में एंटी–डाइबेटिक गुण, ट्राइटरपाइन, सैपोनिन, जिमनेमेजेनिन, जिमनेमिक एसिड ए, बी, सी और डी, फेरिक ऑक्साइड एवं मैगनीज आदि तत्व पाए जाते हैं। गुड़मार हमारी एंजाइम प्रवृति को बढ़ा देता है, जिससे शर्करा का पाचन बढ़ जाता है। नई खोजों के आधार पर गुड़मार से पैन्क्रियास के बीटा सेल की क्रिया में बढ़ोतरी होती है। इससे इन्सुलिन के निर्माण में भी वृद्धि पाई गई है।

मिट्टी

गुड़मार की खेती को विभिन्न प्रकार की मिट्टी में आसानी से किया जा सकता है तथा इसके लिए उचित जल निकास वाली दोमट, लाल एवं काली मिट्टी अच्छी मानी जाती है। यह पौधा जल भराव के प्रति संवेदनशील होने के कारण इसमें जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

किस्मों / प्रकार

पत्ती के आकार के आधार पर लताओं को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

चित्र संख्या–1 : गुड़मार

ए) छोटे पत्ते के आधार परः पत्तियाँ शुष्क क्षेत्रों में पाए जाने वाले अंडाकार 1.0–3.5 से.मी. लंबाई और 1.5–2.5 से.मी. की बहुत नरम होती हैं।

बी) चौड़ी पत्तियों के आधार परः ये पत्तियाँ भी अंडाकार लंबाई 3–6 से.मी. लंबाई और 3.5–5.0 से.मी. चौड़ाई में होती हैं। छोटी पत्तियों के प्रकार की तुलना में पत्तियाँ गहरे हरे रंग की हैं और ये भी प्यूब्सेंट हैं।

प्रवर्धन

पौधे का बीज या तना कटिंग द्वारा तैयार किया जाता है।

ए) बीज द्वारा प्रवर्धन के लिए नवंबर–दिसंबर महीने के दौरान ताजा कटा हुआ फल से बीज एकत्र कर के बीज को पानी में 24 घंटे भिगोने के बाद बीज को 3 ग्राम बाविस्टिन नामक फफूँद नाशक से बीजों को उपचारित करना चाहिए। अगले दिन बालू में मिश्रित कर क्यारी में बोया जाता है। क्यारी में समुचित नमी बना कर रखने पर बीज लगभग 15 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं और 40–50 दिनों के बाद उन्हें पॉलिथिन बैग में मिट्टी, बालू और सड़ी हुई गोबर की खाद का समान अनुपात के मिश्रण को भरने के उपरांत बीजों के पौधों को रोपित किया जाता है। एक हेक्टेयर पौध लगाने के लिए लगभग 2–3 किलो बीज की आवश्यकता होती है।

बी) कटिंग द्वारा प्रवर्धन के लिए पेंसिल की मोटाई वाली तना

चित्र संख्या–2 : पॉलिथीन बैग में तैयार पौधे

की कटिंग को 30 मिनट के लिए 1000 पी.पी.एम. के आई.बी. ए. के मिश्रण के घोल से शोधित करने से कटिंग में जड़ों का विकास अच्छी तरह से होता है। इससे कटिंग चलने कि संभावना 75 से 78 प्रतिशत हो जाती है। जब कटिंग के तना एवं जड़ो का विकास अच्छी तरह से हो जाये तो उन्हें 1 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से उपचारित कर पॉलिथीन बैग में रोपण कर दिया जाता है। इसके लिए जनवरी–फरवरी माह उत्तम होता है। पॉलीथीन बैग में पौध तैयार कर जुलाई–अगस्त माह में खेत में रोपित किया जाता है।

भूमि तैयारी और रोपण :

इसके रोपण के लिए जून–जुलाई माह सबसे अच्छा माना जाता है। भूमि की जुताई तथा तैयारी के पश्चात 45 से.मी. लम्बाई, चौड़ाई तथा गहरे आकार के गड्डे की खुदाई मई माह में कर देना चाहिए जिससे गड्डे में उपस्थित कीड़ें मकोड़ें नष्ट हो जाये। इस गड्डे को बारिश होने से पहले सड़ी हुई गोबर की खाद और शीर्ष मिट्टी मिला कर गड्डे को भरते हैं तथा पंक्तियों के बीच की दूरी 2.5 मीटर पर तथा पौधों से पौधों के बीच 1.75 मीटर की उचित दूरी पर लगाये जाते हैं।

प्रबंधन

गुड़मार बहुवर्षीय लता होने के कारण इसके लिए 2 मीटर पत्थर के खम्भे या लोहे के एंगल एवं तारों ''वाई'' आकार के बने खम्भे पर सधाई किया जाता है। इसकी लताओं को लोहे के तार से बने बाड़ पर सधाई किया जाता है। गुड़मार का पौधा जमीन पर न गिर सके इसके लिए उचित प्रबंध होना चाहिए।

सिंचाई और खरपतवार

रोपण के तुरन्त बाद ही सिंचाई कर देनी चाहिए तथा गर्मियों के दिनों में एक सप्ताह में और सर्दियों के दिनों में 15 से 18 दिनों में सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। सिंचाई की जरुरत खेत में नमी की मात्रा तथा मौसम पर निर्भर करता है। खरपतवार पौधों के साथ पानी एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इस लिए पौधे के चारों ओर एक मीटर के क्षेत्र को खुरपी की सहायता से निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

कीट : प्रबंधन

नियंत्रण : तैला और हरी मक्खी को नियंत्रित करने के लिए इमिडाक्लोप्रिड 2 मिली लीटर कीटनाशक दवा को प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव किया जाता है। नुवाकोन का 1 मि.ली. को एक लीटर पानी में मिलाकर हरी मक्खी को नियंत्रित किया जा सकता है।

रोग : प्रबंधन

मृदुरोमिल आसिता (पेरोनोस्पोरा आबेरिसेंस) रोग के प्रभाव को सामान्यतया 10–15 दिनों के अंतराल पर 2 ग्राम घुलनशील सल्फर या मोंकोजेब के 3 ग्राम को प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़क कर रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई एवं उपज

गुड़मार लगाने के दो साल बाद कटाई के लिए तैयार हो जाती है। जब पौधे फूलना शुरु कर देते हैं या जून के अंत से जुलाई के पहले सप्ताह के दौरान पत्तियों को फूलों के साथ हाथ से चुनकर हाशिया/चाकू से काट कर एकत्र किया जाता है। गुड़मार की पत्तियों को लगभग 7–8 दिनों के लिए छायादार पर्याप्त हवा वाले स्थान पर फैलाकर सूखाया जाता है। गुड़मार पौधे को फूल आने के दौरान साल में केवल एक बार कटाई की जाती है। औसतन 5–6 किलोग्राम सूखे पत्ते प्रति पौधे 4 साल पुराने से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रति हेक्टेयर 100–150 कुन्तल सूखे पत्ते प्राप्त होता है। अच्छे प्रबंधन होते रहने के कारण गुड़मार 10–15 सालो तक इसकी खेती की जा सकती है।

गुड़मार के पौधे का औषधीय उपयोग

- यह भूख बढ़ाने वाली, मूत्रवर्धक, ठंडक प्रदान करने वाली और टॉनिक के रुप में उपयोग की जाने वाली औषधीय पादप है।
- इसको मुख्य मधुमेह उपचारात्मक जड़ी–बूटी के रुप में उपयोग किया जाता है।
- यह अग्नाशय से शर्करा को हटा देती है जिससे अग्नाशय पुनः अपनी स्थिति में आ जाता है
- यह ग्रंथियों के सूजन, खांसी और बुखार के इलाज के लिए उपयोगी होती है।
- यह सामान्यतः सीरम, कोलेस्ट्राल और ट्राइग्लिसराइड के स्तर को बनाए रखने में मदद करती है।
- लंबे समय अवधि तक इस्तेमाल करने से यह शर्करा के स्तर को कम कर देती है।
- इसकी जड़ का पेस्ट या चूर्ण सर्प के काटने के घाव में लगाया जाता है।
- यह जड़ी–बूटी स्वस्थ्य, वजन को नियंत्रित और दुरुस्त करती है। चीनी खाने की लालसा को कम करती है, अपच, कब्ज, पीलिया और कार्डियोपैथी के लिए गुड़मार का पौधा उपयोगी होता है।

पादपों द्वारा सर्पदंश का उपचार

मुहम्मद आरिफ, राखी सिंह एवं मंजूषा श्रीवास्तव
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है। यहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता मंत्रमुग्ध कर देती है। भारत में अनेक प्रकार के जीव जन्तु एवं वनस्पतियां पायी जाती हैं। यहां पाए जाने वाले जीव जन्तु एवं पेड़ पौधों की अपनी ही महत्ता हैं। कुछ तो धार्मिक दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण एवं पूजनीय हैं। भारत में पाए जाने वाले सभी जीवों में सर्प को एक विशेष स्थान प्राप्त है। विश्व में लगभग 3500 सर्प प्रजातियाँ ज्ञात है इनमें 600 प्रजातियाँ प्राण घातक होती है। भारत में 270 से भी ज्यादा सर्प प्रजातियाँ पायी जाती हैं। जिनमें सिर्फ 60 प्रजातियाँ ही विषैली होती हैं। उनमें से भी सिर्फ 15 प्रजातियाँ अति विषैली होती हैं। जिनके काटने से प्राणघात हो सकता हैं। इनमें ज्यादातर प्रजातियाँ विषहीन हानिरहित होती हैं। जीव वैज्ञानिकों का यह मानना है कि लोग सांप के काटने से कम, भय एवं आशंका से ज्यादा जान गंवाते है। भारत में लगभग 1300–50000 लोग प्रत्येक वर्ष सर्पदंश के कारण मारे जाते हैं और यह विश्व में सर्पदंश से होने वाली सबसे बड़ी मृत्युदर है जिसका कारण है समय पर उपचार ना मिल पाना। ऐसी भयावह स्थिति में वे पौधे अमृत का काम कर सकते है जिनमें सर्पदंश से लड़ने एवं उपचार करने की शक्ति हो। पारंपरिक औषधि विज्ञान में आयुर्वेद, यूनानी, चाइनीज औषधीय पद्धति में पादपों द्वारा सर्पदंश की चिकित्सा का वर्णन है। जैसे – सर्पगंधा, सरहटी, अपराजिता, पलाश, चिरोंजी इत्यादि।

भारत में चार सर्प प्रजातियाँ अपने प्राणघातक विष के लिए विश्व विख्यात है। इन्हें एक साथ अंग्रेजी में बिग फोर के नाम से जाना जाता है जो निम्नवत है।

क्रम. सं.	नाम	प्रजाति	मृत्युदर / वर्ष	चित्र
1.	भारतीय क्रेट	12	10,000	
2.	भारतीय कोबरा या नाग	3	15,000	
3.	रसेल वाइपर या कोरिवाला	5	25,000	
4.	सॉ स्केल्ड वाइपर	–	5000	

सर्प विष :–

सरीसृप जीवों में सांप का जहर सबसे तीव्र एवं रहस्यमयी द्रव है। यह बहुत ही जटिल मिश्रण है इसमें प्रोटीन, पेप्टाइड और लगभग 25 तरह के एंजाइम पाए जाते हैं। सन 1843 में लुसिएन बोनापार्ट ने सर्व प्रथम सांप के जहर के प्रोटीन की प्रकृति के बारे में बताया था। सांप के जहर में 90–95 प्रतिशत प्रोटीन होता है और यह उसके सभी जैविक प्रभावों के लिए उत्तरदायी होता है। विष में हजारों प्रकार के प्रोटीन पाए जाते है। विशेष रूप से टॉक्सिन्स न्यूरोटॉक्सिन्स साथ ही साथ नॉनटॉक्सिक प्रोटीन भी पाए जाते है जिसमें अनेक प्रकार के औषधीय गुण होते है जिनका उपयोग अन्य औषधि निर्माण में किया जाता है। जैसे कर्करोधी, अल्जाइमर, पार्किसन, दर्दनिवारक एवं सौन्दर्य प्रसाधनों में भी विष का प्रयोग किया जाता हैं। पॉलीपेप्टाइड विष में साइटोटॉक्सिन, कार्डियोटॉक्सिन एवं पोस्टसिनेप्टिक न्यूरोटॉक्सिन्स (α–बंगरोटॉक्सिन तथा कोबराटॉक्सिन) सम्मिलित है, जो न्यूरोमस्कूलर जोड़ो पर

एसिटाइल कोलिन रिसेप्टर्स को बांधते हैं। विष में पाए जाने वाले एंजाइम 80–90 प्रतिशत वाइपर एवं 25–70 प्रतिशत एल्पीड जहर बनाते हैं जिनमें पाचन हाइड्रोलिसिस, एल अमीनों अम्ल, ऑक्सिडेज, फॉस्फोलाइपेज, थ्रोम्बिन, प्रो–कोगुलेट, और कैलिकेरिन जैसे सेरिन, प्रोटिएज, तथा मिटैलोप्रोटिनेज (हैमोरेजिन) पाए जाते हैं जो संवहनी एंडोथिलियम को हानि पहुँचाते है। इसके अतिरिक्त साँप के जहर में कार्बोहाइड्रेट, एमिन, न्यूक्लियोसाइट, ओलिगोपेप्टाइड और धातु भी पाए जाते है ये भांति–भांति प्रकार से हमारी जैविक क्रिया को प्रभावित करते हैं।

विष की रासायनिक संरचना :–

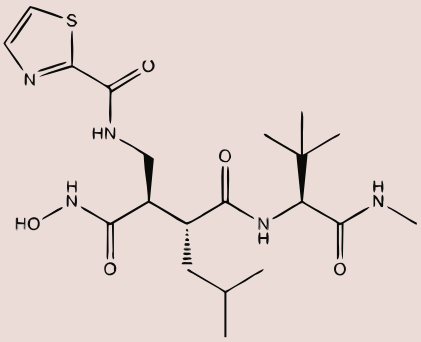

α–कोबराटॉक्सिन

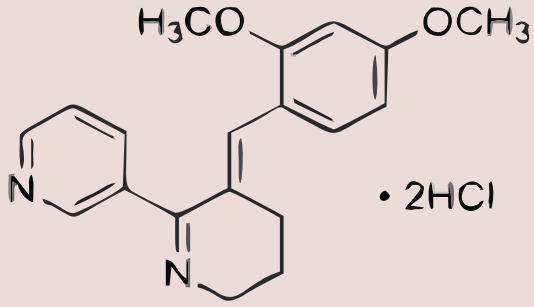

α–बंगरोटॉक्सिन

सर्प दंश के उपचार :– यद्यपि पारम्परिक चिकित्सा पद्धति की व्यापक सफलता के उपरान्त यह अभी भी बहुत महत्वपूर्ण है कि अन्य विष अवरोधकों की खोज की जाए चाहें वो संश्लेषित हों अथवा प्राकृतिक क्षेत्रों से, जो पारम्परिक विष अवरोधकों के पूरक या विकल्प हो सकते हैं। आमतौर पर पारम्परिक चिकित्सा पद्धति विशेष रूप से प्रचलित है। कुछ पारम्परिक चिकित्सा पद्धति ज्यादा प्रभावशाली नहीं हैं, परन्तु सर्पदंश में ग्रामीण क्षेत्रों में पौधों की पत्तियों को चबाना, उनका रस पीना या उनका लेप लगाना प्रचलन में है। इसके अतिरिक्त पौधों के अन्य भागों जैसे जड़, तना, पत्ती, फूल, इत्यादि के अर्क या काढ़े के उपयोग का वर्णन मिलता है।

क्र. सं.	वनस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग की विधि
1.	*एब्रस प्रिकटोरियस*	फैबेसी	कुंदुमनी, गुंज	बीज, पत्ती, जड़	2 से 3 ग्राम ताजी पत्ती, जड़ या बीज को लेप (पेस्ट) बना कर ठण्डे पानी या गाय का दूध (दिन में 2 बार, 5 से 7 दिन) के साथ लेने से लाभ मिलता है। इसकी जड़ का चूर्ण वाह्य रूप से भी प्रयोग किया जाता है।
2.	*एकैलिफा इंडिका*	युफोरबिएसी	कुप्पी (इंडियन एकैलिफा)	पत्ती पूर्ण पादप	पत्ती के लेप (पेस्ट) को सर्पदंश की जगह पर लगाना लाभकारी हैं (3 से 4 दिन)
3.	*एजिल मारमेलॉस*	रूटेसी	बेल, विलवम	फल, पत्ती, जड़, छाल	5 दिन तक दिन में 2 बार इसके पत्ती के अर्क को लेने से सर्पदंश ठीक हो जाता है।
4.	*एलियम सिप्पा*	लिलिएसी	प्याज, वेन्कायम	बल्ब	लेप को वाह्य रूप से 5 दिन तक प्रयोग करने से सर्पदंश ठीक हो जाता है।
5.	*एलियम सटायिवम*	लिलिएसी	सेसम	बल्ब	बल्ब का लेप मौखिक रूप से दिया जाता है।
6.	*अमरेन्थस विरडिस*	अमरेन्थेसी	चौलाई , खुस्रो	पत्ती, तना	पत्ती और तने का लेप लगाया जाता है।
7.	*अमरेन्थस स्पिनोसस*	अमरेन्थेसी	कटेली, कटीली चौलाई, कांटा भाजी	जड़, पत्ती पूर्ण पादप	पत्ती का लेप सर्पदंश की जगह पर लगाया जाता है।

8.	*बोर्हाविया डिफ्युजा*	निक्टाजिनेसी	पुनर्नवा, डब्बल भाजी, पत्थर चट्टा	पत्ती, पूर्ण पादप	पत्ती का रस सर्पदंश वाली जगह पर लगाने एवं 7 दिन तक पीने से लाभ मिलता है।
9.	*बॉम्बेक्स सीबा*	बॉम्बेसी	इलावु, सेमर, सेमल	फूल, जड़, बीज	फल, फूल, पत्ती का लेप दंश वाली जगह पर लगाया जाता है।
10.	*धतुरा मेटल*	सोलनेसी	धतूरा	पत्ती, जड़, बीज	जड़ के अर्क को लहसुन के साथ लिया जाता है।
11.	*ऑसिमम सैंक्टम*	लैमिएसी	तुलसी	पत्ती, जड़,	तुलसी की पत्ती और हल्दी की जड़ (राइजोम) का लेप सर्पदंश पर लगाया जाता है। पत्ती के रस का 8 दिन तक सेवन करने से भी लाभ मिलता है।
12.	*पाइपर नाइग्रम*	पाइप्रेसी	कालीमिर्च, बलकालु	फूल, बीज, फल	बीज के पाउडर को मक्खन के साथ खाया जाता है। फूल का लेप घी के साथ 4 दिन तक लेने से सर्पदंश ठीक हो जाता है।
13.	*सौरोमैटम वेनोसम*	एरैसी	हलीदा, सांप की दवा	कंद	प्रभावित क्षेत्र पर कंद (ट्युबर) का लेप लगाया जाता है।
14.	*ओफियोराइजा मुंग्गोस*	रूबिएसी	हविना गेद्दा, सरहटी, सरपक्षी	जड़	6 दिनों तक दिन में 2 बार जड़ की रस का सेवन लाभकारी होता है।
15.	*एम्बलिका ऑफिसिनेल*	युफोरबिएसी	आंवला, आम्ला, नेल्ली	तना, पत्ती, फल, जड़	जड़ की रस का काली मिर्च के साथ सेवन करने से लाभ मिलता है। पत्ती का रस पीने से भी सर्पदंश ठीक हो जाता है।

कुछ सामान्यतः पाए जाने वाले दंशरोधी पादप :

***एरिस्टोलोकिया इंडिका* (नागवेल)** : नागवेल शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से हुई है नाग अर्थात सर्प और वेल अर्थात लता। इसकी ताजी जड़ को *राउल्फिया सर्पेंटिना* के साथ मिश्रित कर दिन में तीन बार तीन दिन तक सेवन करने से सर्पदंश में लाभ मिलता है।

बकोपा मोन्नेरी (ब्राह्मी) : ब्राह्मी के रस को अरंडी के तेल में मिला के दंश वाली जगह पर लगाने से लाभ होता है। गाय के गर्म दूध में पत्ती के चूर्ण को मिला के पीने से भी सर्प दंश ठीक होता है।

***केसिया फिस्टुला* (अमलतास)** : अमलतास की जड़ की छाल का पेस्ट तथा अर्क को कालीमिर्च के साथ सर्पदंश में लेना लाभप्रद होता है। तने की छाल का पेस्ट सर्पदंश वाली जगह पर लगाने से सर्पदंश ठीक हो जाता है।

***मिमोसा पुडिका* (लाजवंती / छुईमुई)** : लाजवंती का पूरा पौधा ही बहुत उपयोगी होता है। इसके पूरे पौधे के अर्क को दिन में दो बार पीने से सर्पदंश जल्दी ठीक हो जाता है। पत्ती के चूर्ण को पीस कर लेप को प्रभावित जगह पर लगाना लाभदायक होता है।

***राउल्फिया सर्पेंटिना* (सर्पगंधा)** : इसकी लगभग 86 अलग–अलग प्रजातियाँ पायी जाती है। परन्तु *राउल्फिया सर्पेंटिना* प्रमुखतः सबसे ज्यादा उपयोग में आने वाला पादप होता है, अराउल्फ साँप जैसी संरचना को दर्शाता हैं। इसके स्थानीय नाम सर्पगंधा का अर्थ है सर्प जैसी गन्ध। स्थानीय वैद्य एवं जनजातीय लोग इसका व्यापक रूप से उपयोग करते है। इसकी पत्ती एवं जड़ विषनाशक की तरह उपयोग की जाती है। जड़ एवं पत्ती की कली दूध के साथ चूर्ण करके इसका लेप वाह्य एवं आन्तरिक रूप से प्रयोग किया जाता है।

***मोरिंगा ओलीफेरा* (सहजन)** : इसकी छाल और जड़ का उपयोग किया जाता है। छाल का ताजा अर्क पीना लाभप्रद है यद्यपि छाल और जड़ को मिला कर वाह्य रूप से प्रभावित जगह पर लगाने से लाभ होता है।

भारत में पांरपरिक एवं जनजातीय संस्कृति द्वारा पादपों के औषधीय उपयोग का लंबा इतिहास रहा है। यहां पिछले कुछ वर्षो में किए गए वैज्ञानिकों द्वारा जांच पड़ताल में 523 पादप प्रजातियाँ पायी गई है जिनका सर्प दंश में उपयोग कर सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रजातियों को उनकी उपलब्धता के आधार पर घर के आँगन या गमलों में लगाना चाहिए ताकि सर्पदंश में रोगी को प्रारम्भिक उपचार दिया जा सके और उपचार ना मिलने या उपचार में विलंब होने से किसी रोगी को प्राण न गंवाना पड़े। इस क्षेत्र में बहुत से शोध कार्य आलेखित हुए हैं परन्तु इसे प्रयोगात्मक रूप से आगे बढ़ाने तथा इस संदर्भ में वृहद शोध कार्य करते रहने की आवश्यकता है।

लसोड़ा एक बहुपयोगी उपेक्षित प्रजाति

सोनम मौर्य, पंकज भारती एवं बालेश्वर
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

आदि काल से पौधे मानव के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, एवं चिकित्सकीय जरूरतों के लिए दवाएं बनाने हेतु बुनियादी जरूरतों का प्रमुख स्रोत रहे हैं। प्राचीन भारतीय औषधीय क्षेत्र में ईसा से सदियों पूर्व चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट द्वारा लिखित चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांगहृदय को आयुर्वेदिक परंपरा के तीन बुनियादी और आधिकारिक कार्यों के रूप में मान्यता प्रदान है। इनके अलावा अन्य ग्रंथो में, विभिन्न लोक कथाओं एवं लोक गाथाओं आदि में दवाओं, काढ़ो, तेलों एवं अन्य कई और तरह से रोगों के उपचारों में पौधों का उपयोग औषधीय स्रोत के रूप में इतिहास में बहुत अच्छी तरह से वर्णित किया गया है।

लसोड़ा वानस्पतिक रूप से कॉर्डिया वंश तथा बोराजिनेसी परिवार की प्रजातियों का समूह है। एक जर्मन वनस्पति शास्त्री और फार्मासिस्ट श्वेलेरियस कॉर्डसश के सम्मान में इस जीनस को *कॉर्डिया* नाम दिया गया। लसोड़ा प्रजाति के पौधे मुख्य रूप से अमेरिकी, एशियाई और अफ्रीकी महाद्वीपों के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय देशों जैसे मैक्सिको, वेस्टइंडीज, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, पूर्वी तथा पश्चिम अफ्रीका, नाइजीरिया, घाना, पाकिस्तान, श्रीलंका और भारत में पाए जाते हैं। *कॉर्डिया* वंश में लगभग 250 प्रजातियाँ शामिल हैं जिनमें से अधिकांश छोटे से मध्यम आकार के पेड़ तथा कुछ झाड़ी नुमा पौधे होते हैं। लसोड़ा की प्रजातियाँ मुख्य रूप से अमेरिकी मूल की हैं तथा विस्तृत रूप से मध्य अमेरिका से अर्जेंटीना के मध्य क्षेत्र तक पाई जाती हैं। इसके अलावा, लगभग 50 प्रजातियाँ अफ्रीका और मेडागास्कर में,तथा केवल 25 प्रजातियां ही एशिया क्षेत्र में पाई जाती हैं। *कॉर्डिया* की कई प्रजातियों की खेती सजावटी पौधों, लकड़ी और औषधीय अनुप्रयोगों के लिए की जाती है, जहां उनका पारंपरिक समुदायों द्वारा बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है।

कॉर्डिया की वर्गिकी स्थिति

जगत–वनस्पति
समूह–ट्रेकिओफाइट्स
समूह–एंजियोस्पर्म
समूह–यूडिकोट्स
समूह–एस्टरिड्स
अनुक्रम–बोराजिनेलेस
परिवार–बोराजिनेसी
वंश–कॉर्डिया ली।

भारत वर्ष में लसोड़े की लगभग 21 प्रजातियाँ पाई जाती हैं, और इनको हिन्दी में लसोड़ा, गुंडो तथा अंग्रेजी में भारतीय चेरी कहा जाता है, जो राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, गुजरात आदि राज्यों में 5,000 फीट की ऊंचाई तक गर्म क्षेत्रों में सामान्यतः वितरित हैं, परन्तु उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों तथा दक्षिणी भारत में यह प्रचुर मात्रा में और स्वाभाविक रूप पाया जाता है। भारत में क्षेत्रीय आधार पर लसोड़े की अधिकतम विविधता तमिलनाडु में पाई जाती है, जहां से 13 प्रजातियों को सूचीबद्ध किया गया है। जिनमें से तीन प्रजातियां जैसे *कॉर्डिया डिफ्यूसा, कॉर्डिया डोमेस्टिका* और *कॉर्डिया रामानुजमी* राज्य के लिए स्थानिक होने के साथ *कॉर्डिया डिफ्यूसा* को गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है (अरुमुगम आदि, 2019)। भारत में *कॉर्डिया डोमेस्टिका, कॉर्डिया मिक्सा, कॉर्डिया सेबेस्टेना* और *कॉर्डिया सबकॉर्डेटा* की सीमित पैमाने पर फल, लकड़ी और पत्ते के लिए खेती की जाती है जबकि *कॉर्डिया सेबेस्टेना* और *कॉर्डिया सबकॉर्डेटा* की सजावटी उपयोगिता भी अच्छी है।

स्थानीयनाम– **हिन्दी** : लसोड़ा, **संस्कृत** : बहुवराह, **गुजराती** : वड़गुंडो, **मराठी** : भोकर व शेलू, **कन्नड़** : चाले, हादिगे, **मलयालम** : नारुवरी, **तेलुगू** : बांकानकेरा, चिन्ना–**नक्के** : बोत्गिरी, **तमिल** : नरुविली, सीताम, नरुवली **खासी** : दींगमोंग, **मणिपुरी** : लमकेलाबा, **मिजो** : मुक, **नेपाली** : बोहोरी, कालो बोहोरी कलो बोहोरी।

इसकी प्रजातियां अपने प्राकृतिक आवासों आम तौर पर में बड़ी आबादी में नहीं पाई जाती हैं तथा इनके पेड़ मुख्यतः शुष्क छायादार घाटियों, सड़कों, खेतों और जंगलों के किनारे तथा खुली भूमि पर अकेले पाया जाता है। भारत के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्र इसकी कई प्रजातियों के प्राकृतिक आवास हैं जहां यह काफी व्यापक रूप से पाया जाता है इसलिए इसमें सूखे को सहन करने की अच्छी क्षमता मौजूद है। लसोड़ा के पौधे बहुत कठोर होते हैं और लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में उगाए जा सकते हैं। हालांकि, नम बलुई दोमट मिट्टी जोरदार

चित्र संख्या–1 : लसोड़ा के फलीय पादप

वृद्धि और उत्पादकता के लिए सब से उपयुक्त होती है। यह उपेक्षित, कम उर्वरता वाली, रेतीली, दलदली, लवणीय तथा क्षारीय मिट्टी पर भी अच्छी तरह से पनपता है और इसलिए इसका बंजर भूमि के वनीकरण और क्षारीय मिट्टी का पुनरूद्धार और समामेलन के लिए बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

प्राचीन काल से खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में और आदिवासी समुदायों के बीच कम उपयोग किए गए फल पारंपरिक खाद्य पदार्थों का अभिन्न अंग रहे हैं, जो कि विटामिन, खनिज, वसा, कार्बोहाइड्रेट और एंटीऑक्सीडेंटस के बहुत समृद्ध स्रोत हैं लेकिन इनका अच्छी तरह से दोहन नहीं किया जा सकता है। भारत में कॉर्डिया की कई प्रजातियां जैसे *कॉर्डिया गराफ, कॉ.. डाइकोटोमा, कॉ. मिक्सा, कॉ. मैकलियोडी, कॉ. रोथाई, कॉ. वेस्टिटा और कॉ. वालिचियाई* आदि अति उपयोगी पादप आनुवंशिक सम्पदा हैं जिनका उपयोग गुणवत्ता सुधार, बेहतर उत्पादन, बड़े पैमाने पर खेती और विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पाद बनाने और ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में आय में सुधार और आजीविका पैदा करने के लिए किया जा सकता है। इन्हीं में से एक है *कॉ. मिक्सा,* जो कि एक मध्यम आकार का, जिसका तना टेढ़ा मेढ़ा और घने पत्ते वाला पेड़ है। यह प्राकृतिक रूप से उत्तर और उत्तर–पश्चिम भारत के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है, और कहीं–कहीं इसकी खेती नियोजित बाग के रूप में और आवासीय भूमि पर की जाती है। भारत में *कॉर्डिया मिक्सा* में बहुत अधिक आनुवंशिक विविधता मौजूद है विशेष रूप से राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश में वृक्ष रोपित किए गए पौधों में (हलधर और माहेश्वरी, 2019)। इसके छोटे आकार के फल गुच्छों में लगते हैं, जिनका उपयोग पारंपरिक रूप से सब्जी और अचार बनाने में किया जाता है। कॉ. डाइकोटोमा का उपयोग जोशांदा, जोकि एक पॉली हर्बल फॉर्मूलेशन है का एक मुख्य घटक है, जिसका उपयोग सर्दी, जुकाम, खांसी, सांस की तकलीफ, बुखार के इलाज के लिए भारत में बड़े पैमाने पर किया जाता है। हाल ही (वर्ष 2016) में तमिलनाडु के पूर्वी घाटों से *कॉर्डिया* रामानुजमी नामक एक स्थानिक प्रजाति रिपोर्ट की गई है। इस प्रजाति के फल भी खाने योग्य होते हैं और चिपचिपे श्लेष्मा (मेसोकार्प) के कारण बच्चे इससे खेलते है। यह आमतौर पर अपने प्राकृतिक आवासों में *बौहिनिया टोमेंटोसा, कॉर्डिया मोनोइका, एहरेशिया प्यूब्सेंस, ग्लाइकोस्मिॉ रिटियाना, हिल्डे कार्डिया पॉपुलिफोलिया, मेमेसिलोन अम्बेलैटम* से जुड़ा होता है। *कॉर्डिया क्रीनेटा* पश्चिमी भारत के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक लुप्तप्राय प्रजाति है, इसके संरक्षण और प्रबंधन के लिए व्यवस्थित प्रयासों की तत्काल आवश्यकता है।

फूल आने और फलने का समय–मार्च से जुलाई

राजस्थान में लसोड़ा का उत्पादन बढ़ाने के लिए कार्यरत आईसीएआर–सीआईएएच, बीकानेर से 'थारबोल्ड', आईसीएआर–काजरी, जोधपुर से 'मारुसमृद्धि', और एस के एन कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, जयपुर से 'करणलसोड़ा' नामक किस्मों को चयन के आधार पर विकसित किया गया है। इन किस्मों में 90 से 150–200 किलो कच्चे फल /वर्ष का उत्पादन प्राप्त होता है। इस तरह की बेहतर किस्मों का उपयोग व्यावसायिक खेती के लिए तथा इनकी सिफारिश शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में ब्लॉक प्लांटेशन और कृषि–वानिकी प्रणाली के एक घटक के रूप में की जा सकती है। इस तरह से जैव विविधता को बढ़ाने, मिट्टी के कटाव को रोकने, भूमि की उर्वरता को बढ़ाने, और बंजर भूमि सुधार के माध्यम से हम पारिस्थितिक सुरक्षा के साथ–साथ आजीविका सृजन प्राप्त कर सकते हैं।

सेकेंडरी मेटाबोलाइट्स

लसोड़ा की प्रजातियों में प्रमुखता से पाए जाने वाले माध्यमिक मेटाबोलाइट्स में टेरपेनोइडहाइड्रोक्विनोन, ट्राइटरपेनोइड्स, प्रीनीलेटेडहाइड्रोक्विनोन, मेरोटेरपेनॉइड नेफ्थोक्विनोन, पॉलीसेकेराइड, फैटीएसिड, सेस्क्यूटरपेन्स, फ्लेवोनोल ग्लाइकोसाइड्स, ओलीनेन– और ursane– टाइपट्राइटरपेन्स, एरिलनाफ्थेलीनटाइपलिग्निन, डैमराने– टाइपट्राइटरपेन्स और हाइड्रोकार्बनकॉर्डियालिनए, लिनोलेनिक एसिड, क्वेरसेटिन, ओलिकएसिड, एपिजेनिन, बेटुलिन, ल्यूपोल, प्रोटोकैच्यूइक एसिड, रोसमारिनिक एसिड, पी–हाइड्रोक्सी फेनिलैसेटिक एसिड आदि शामिल हैं।

मुख्य पोषक तत्व

लसोड़ा (*कॉ.मिक्सा*) के परिपक्व फलों में राख (6.7–22.1%), क्रूड प्रोटीन (3.67–8.32%), क्रूड लिपिड (1.83–2.2%), क्रूड फाइबर (13.7–25.7%) और कार्बोहाइड्रेट (1.26–57.08%), तथा उच्च औषधीय मूल्यों वाले विटामिन और खनिज भरपूर मात्रा पाए जाते हैं, अतः परिपक्व फलों का उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माण में किया जाता है। *कॉर्डिया डाइकोटोमा* के बीज की गुठली में उच्चमात्रा में वसायुक्त तेल और प्रोटीन होते हैं इस तरह जिनमें मवेशियों का चारा बनाए जाने की क्षमता होती है। इसके फलों में कुछ पोषक–औषधि संघटक कभी मौजूद हैं जैसे कि फाइटिक एसिड (355 मिलीग्राम), फाइटेट फॉस्फोरस (100 मिलीग्राम) और ऑक्सालिक एसिड (250 मिलीग्राम) प्रति 100 ग्राम (देशमुख आदि, 2011)।

औषधीय उपयोग एवं गुण

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध में *कॉ. डाइकोटोमा, कॉ. लैटिफोलिया, कॉ.मैकलियोडी, कॉ.मिक्सा, कॉ.रोथाई* और *कॉ.ओब्लिका* आदि प्रजातियों का उपयोग विभिन्न विकारों का इलाज करने के लिए किया जाता है। लसोड़ा की अधिकांश प्रजातियों का उपयोग घाव, फोड़े, ट्यूमर, गठिया, अल्सर, रक्तशोधक, ज्वरनाशक और सर्पदंश के इलाज में किया जाता है। कई प्रजातियों के पत्तों का काढ़ा फ्लू, बुखार, खांसी, सर्दी, दमा, मासिक धर्म, ऐंठन, पेचिश,

दस्त और सिरदर्द के इलाज के लिए प्रयोग किया जाता है। छाल का उपयोग यकृत उत्तेजक के रूप में किया जाता है। इनकी जड़ के काढ़े का उपयोग तपेदिक, ब्रोंकाइटिस, उल्टी और मलेरिया को ठीक करने के लिए किया जाता है। कृष्णा आदि (2019) के अनुसार लसोड़ा के फल विभिन्न एंटीऑक्सीडेंट का अच्छा स्रोत हैं (तालिका 1) तथा इनमें रोगाणुरोधी, एंटीबायोटिक संशोधन, सूजनरोधी, मूत्र वर्धक, डिमूलसेंट, एक्सपेक्टोरेंट, एंटीनोसिसेप्टिव, एंटीफर्टिलिटी, हाइपोलिपिडेमिक, इम्यूनोमॉड्यूलेटरी, विषाक्तता, एंटी–हेल्मिन्थिक, कीटनाशक आदि गुण पाए जाते हैं (मतियास आदि, 2015)।

तालिका 1. लसोड़ा के फलों के एंटीऑक्सीडेंट गुण

क्र.	गुण	मात्रा
1.	पॉलीफेनोल्स (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	137.56
2.	फ्लैवनॉल (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	14.32
3.	फ्लेवोनोइड (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	434.28
4.	डायहाइड्रिक फिनोल (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	45.67
5.	एंटीऑक्सीडेंट की कुल मात्रा (एमटीई / 100 ग्राम)	10.67

लसोड़ा के अन्य उपयोग

- लसोड़ा के कच्चे फलों को ताजा, सूखाकर और अचार तथा सब्जी बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। पके फल स्वाद में मीठे और खाने योग्य श्लेष्मा युक्त होते हैं।
- फल में मौजूद क्रोमियम का मधुमेह में चिकित्सीय महत्व है। पके फल से तैयार सिरप को कई उपचारों जैसे ज्वर, कासा, प्रत्याशय, कृमी, रक्तदोष, रक्तपित्त विकार, अस्थमा, तृष्णा, उपदंश, वात–पित्त–जन्यरोग में इस्तेमाल किया जाता है।
- मुँह के छालों, मसूड़ों में सूजन और दांत दर्द के साथ–साथ इसकी छाल का पाउडर समग्र ओरल हेल्थ में सहायक होता है। लसोड़े की छाल का पाउडर दो कप पानी में मिलाकर उबालें और इस काढ़े को पीने से दांत का दर्द, छाले और मसूड़ों की सूजन में आराम होता है। गले में खराश होने पर लसोड़े की छाल को पानी में उबालने के बाद छानकर इसमें काली मिर्च और शहद मिलाकर सेवन करने से गले की खराश दूर होती है।
- पके फलों से प्राप्त चिपचिपे सफेद श्लेष्मा में मजबूत आसंजन गुण होते हैं और इसका उपयोग गोंद के रूप कागज और कार्डबोर्ड आदि को चिपकाने के लिए किया जाता है। इसके श्लेष्मा / गोंद को एक उत्कृष्ट इमल्सीफायर और टैबलेट बाइंडर बताया गयाहै। इसके गोंद में आसंजन और सामंजस्य गुणों की उपस्थिति खाद्य सामग्री की कोटिंग्स हेतु इसकी उपयुक्तता इंगित करती है।
- फूल और दही का मिश्रण तेज धूप से शरीर की रक्षा हेतु दिन में दो बार लगाया जाता है।
- पत्तियों को बकरी, भेड़ और मवेशियों के चारे के रूप में और पत्तल बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। पत्तियों को ट्रिपैनोसोमियासिस, आँखों के रोगों, सीने के दर्द, मधुमक्खियों के काटने पर लोशन के रूप में तथा पत्तियों और तने की छाल का उपयोग कुष्ठरोग के उपचार में भाप स्नान के रूप में किया जाता है।
- *कॉर्डिया डाइकोटोमा* की शाखाओं से कपड़े बनाने के लिए प्राकृतिक रेशे की पहचान की गई (जयरामुदु आदि, 2011)।
- तने की छाल को हड्डियों के टूटने की स्थिति प्लास्टर लगाने से पहले पाउडर की तरह त्वचा पर लगाया जाता है। छाल का रस नारियल के तेल के साथ शिकंजा बाँधने में भी प्रयोग किया जाता है।
- लकड़ी को सजावटी फर्नीचर, लकड़ी के खंभे, कृषि उपकरण आदि बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।
- पत्ती का उपयोग मल्चिंग और कम्पोस्ट तैयार करने के लिए किया जा सकता है।

चित्र संख्या–2 : लसोड़े की सब्जी

चित्र संख्या–3 : लसोड़े का अचार

डहेलिया एक आकर्षक सजावटी पौधा

दया शंकर, शंकर वर्मा एवं एस. के. तिवारी
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ 226001

डहेलिया का वानस्पतिक नाम *डहेलिया काक्सीनिया* है। एक कन्दीय आकर्षक, शोभाकारी पौधा होता है। जो कि कम्पोजिटी कुल का सदस्य है। इसमें अनेकों प्रकार के रंग–बिरंगे पुष्प पाये जाते हैं। इसके पौधे इकहरे व दोहरे पुष्प वाले होते हैं और इनको गमलों व क्यारियों में सामान्यतः उगाया जाता है। अलंकृत बागवानी के लिए इनको क्यारियों में लगाया जाता है, जिसका प्रभाव बहुत ही मनमोहक होता है। इसकी उत्पत्ति 16 वीं शताब्दी मे मैक्सिको में हुई थी, उसके बाद यह यूरोपीय देशों मे 18 वीं शताब्दी में पहुँचा। इस पौधे का नाम स्वीडन के वनस्पति शास्त्री एड्रियज डहल (1751–1789) की याद मे डहेलिया रखा गया। इसको विकसित करने के लिए 1881 में एक अंतर्राष्ट्रीय सोसाइटी की स्थापना की गई। जिसके फलस्वरूप डहेलिया को सम्पूर्ण विश्व मे ख्याति प्राप्ति हुई। भारत वर्ष में इसके पौधों को सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी के मध्य, कलकत्ता (कोलकता) में उगाया गया। सन् 1950 के पश्चात् कलकत्ता में ही ''ब्लैक आउट'' नाम की प्रथम भारतीय डहेलिया का पौधा उगाया गया। कलकत्ता में ही सर्वप्रथम स्वामी विनयानन्द रामकृष्ण मठ में डहेलिया पर शोध व विकास का कार्य किया गया और अनेको प्रकार की प्रजातियों को विकसित किया गया तथा विश्व में लोगों को *डहेलिया* से परिचित कराया।

मुख्य प्रजातियाँ – *डहेलिया* के प्रजातियों को मुख्य रूप से 10 भागों मे विभाजित किया गया है।

1. बाटर लिली *डहेलिया*
2. एनीमोन सदृश्य पुष्पों वाले *डहेलिया*
3. कोलोरेट *डहेलिया*
4. फिम्ब्रीऐटेड *डहेलिया*
5. डेकोरेटिव *डहेलिया*
6. बाल *डहेलिया*
7. पॉम्पन *डहेलिया*
8. कैक्ट्स *डहेलिया*
9. सेमी कैक्ट्स *डहेलिया*
10. अन्य *डहेलिया*

उक्त प्रजातियों के औद्यानिक महत्व के अनुसार निम्न प्रमुख किस्में पाई जाती हैं।

डेकोरेटिव डहेलिया

जायंट डेकोरेटिव –

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
1.	*ऐवेलान्स*	व्हाईट
3.	*ईटरनिटी*	औरेंज व्हाईट टिप्स
5.	*केनिया यलो*	यलो
7.	*केनिया ब्लू बाई*	ब्लूइस मौव व्हाइट
9.	*केनिया व्हाईट*	व्हाईट
11.	*केल्विन*	लाईट पिंक
13.	*मंजूश्री*	पिंक व्हाईट वाई कलर
15.	*मोनार्क स्पोर्ट*	फायर औरेंज व्हाईट टिप्स
17.	*प्राइम मिनिस्टर*	परपल
19.	*रामायनी*	लाईट पिंक
21.	*सोमिता*	व्हाईट
23.	*क्रोयडोन ऐस*	यलो
25.	*क्रोयडोन डेलीकेट*	पिंक
27.	*नोब्बयस लाईट*	यलो
29.	*टरामा*	रेड, व्हाईट टिप

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
2.	*ईटरनिटी स्पोर्ट*	स्ट्रा यलो
4.	*कपिल देव*	डीप वायलेट
6.	*केनिया बाई कलर*	यलो –व्हाईट टिप्स
8.	*केनिया ब्लू*	ब्लूइस मौव
10.	*केनिया ओरिजनल*	रोज कलर
12.	*कल्पना*	पिंक
14.	*मजिस्ट्रेट*	यलो फ्रेस
16.	*विगर*	यलो
18.	*रम्बिनी*	लाईट पिंक
20.	*रोमियो*	लैवेन्डर
22.	*सुषमा*	व्हाईट
24.	*क्रोयडोन मोनार्क*	रेड
26.	*नीलमा*	डीप वोयलेट
28.	*नेताजी*	पिंक
30.	*टेंजिग नोरगे*	वेलवेट रेड

लार्ज डेकोरेटिव –

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
1.	*इन्दिरा*	औरेंज
3.	*बारबारा मार्सल*	ब्राइट रेड
5.	*कृष्णाकली ब्लेकिस*	रेड–व्हाईट टिप्स
7.	*कंल्विन रोज*	रोजी पिंक
9.	*मानसी*	रेड व्हाईट
11.	*शिव दुर्गा*	लाईट रेड व्हाईट टिप्स
13.	*प्रेयसी*	सल्फरी यलो
15.	*श्री राधा*	औरेंज व्हाईट
17.	*शारदा देवी*	व्हाईट
19.	*डोन कोर्ट*	डीप रेड
21.	*चेरोकी ब्यूटी*	पिंक
23.	*जेक्यूलाइन केनेडी*	पर्पल
25.	*नीलकंठ*	वोयलेट
27.	*नन्दनी*	औरेंज
29.	*ग्लोरी ऑफ इंडिया*	परपल व्हाईट वाई कलर

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
2.	*बप्पादित्या*	रेड
4.	*ब्लेकआउट*	क्रिमसन
6.	*कृष्णा*	डार्क रेड
8.	*महाप्रभू*	गोल्डन यलो
10.	*प्रियदर्शिनी*	यलो
12.	*पाउडर पफ*	पिंकिस व्हाईट
14.	*प्रेनती*	पिंक
16.	*रोयल रोज*	वायलेट पिंक
18.	*सुगंधा*	औरेंज
20.	*वाईन फ्रेड*	व्हाईट
22.	*चैतन*	लैवेंन्डर
24.	*जैल सिंह*	रेड–व्हाईट टिप
26.	*नीलकमल*	लाईट परपल
28.	*ओक्सफोर्ड गोल्ड*	यलो ब्रोंज
30.	*लोकेश्वरनन्दा*	रेड व्हाईट टिप्स

मीडियम डेकोरेटिव–

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
1.	*अम्रिता*	पिंक
3.	*ऑटम टिप*	रेड–व्हाईट
5.	*भिक्षु बुध्दा*	रोजी पर्पल व्हाईट टिप्स
7.	*भिक्षु विवेक*	ब्राईट रेड
9.	*भिक्षु चैलेन्जर*	रेड एण्ड व्हाईट टिप्स
11.	*बी.के. घोघो*	डीप वोएलेट व्हाईट टिप्स
13.	*गुड ब्रोकेट*	मेजन्टा

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
2.	*अर्थर हम्बले*	पिंक लैवेन्डर
4.	*ऐवेदानन्दा*	व्हाईट दुरंगा
6.	*भिक्षु मदर*	औरेंज व्हाईट टिप्स
8.	*भिक्षु सुसान्ता*	रेड व्हाईट टिप्स
10.	*ब्लू बर्ड*	पर्पल
12.	*चितचोर*	चोकलेट व्हाईट टिप्स
14.	*कथा सिल्पी*	रेड व्हाईट टिप्स

पॉम्पन डहेलिया –

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
1.	*एल्विनों*	व्हाईट
3.	*क्लेरिसिया*	रेडिस पिंक
5.	*ग्लो*	रेड

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
2.	*ब्लेकिस पाम्पोन*	ब्लेकिस रेड
4.	*डस्टन स्टोन*	रेड
6.	*ग्लोरी ऑफ शिमुलताला*	व्हाईट विद पिंक ब्लैंड

कैक्टस डहेलिया –

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
1.	*एलविनो*	कारल पिक
3.	*केबरेट*	क्रिमसन
5.	*ज्योत्सना*	रिच वोयलेट
7.	*लाईट म्युजिक*	रेड
9.	*लोर्ड कृष्णा*	लाई रेडिस पिंक
11.	*पंडमाजा नायडू*	परपल विद व्हाईट टिप्स
13.	*टेलीविजन*	यलो विद व्हाईट ब्लैंड

क्र.	प्रजाति	पुष्प का रंग
2.	*बी.पी.पाल*	औरेंज विद यलो सेंटर
4.	*केतू*	रेड
6.	*कुंजा*	रेड
8.	*लेस मार्कर*	व्हाईट
10.	*डिस्को*	रेड विद व्हाईट टिप्स
12.	*परमा*	औरेंज

चित्र संख्या–1 : केनिया यलो

स्थान एवं भूमि का चयन : *डहेलिया* उगाने के लिए खुला प्रकाश युक्त स्थान जो वृक्ष–झाड़ी व भवनों के छाया से दूर हो उपयुक्त माना जाता है। इसको सभी प्रकार की मृदा मे उगाया जा सकता है किन्तु अच्छी जल निकास युक्त बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम मानी जाती है।

खेत की तैयारी : *डहेलिया* के पौध लगाने के पहले खेत की तैयारी करना आवश्यक होता है। गर्मी के दिनों में खेत की गहरी, 2–3 बार जुताई करके खेत को समतल कर लिया जाता है। इसके बाद पौध को गमलों व क्यारियों मे लगाने के पूर्व खाद एवं उर्वरक का मिश्रण तैयार करके गमलों व क्यारियो में अच्छी तरह डाल करके पौधों को लगाया जाता है।

खाद एवं उर्वरक–पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए गोबर की पुरानी सड़ी हुई खाद, मृदा में डालकर मिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश युक्त उर्वरक को 1:2:1 के अनुपात मे मृदा में मिलाना चाहिए। पौधों की उत्तम वृद्वि, विकास एवं पुष्पन के लिए रासायनिक उर्वरकों का घोल तैयार करके पर्णिय छिड़काव करना चाहिए, जिससे पौधों व फूलों की गुणवत्ता एवं चमक बढ़ जाती है।

***डहेलिया* को गमलों मे उगाना :** इसके पौधे को गमलों मे उगाने के लिए खाद एवं उर्वरक का मिश्रण तैयार करके 10–12'' के मिट्टी के गमलों में भरकर पौध को उगाना चाहिए। 10 किग्रा0 दोमट मिट्टी, 5–7 किग्रा0 पत्ती की सड़ी हुई खाद, 10 किग्रा गोबर की सड़ी हुई खाद, 100 ग्राम सिंगिल सुपर फास्फेट, 20 ग्राम म्युरेटऑफ पोटाश तथा 5–10 ग्राम चूना को आपस में अच्छी तरह मिलाकर मिश्रण तैयार कर लेते हैं। पौधों की उत्तम बढ़वार के लिए 100 ग्राम हड्डी की खाद प्रति गमला के हिसाब से अवश्य मिलाना चाहिए।

प्रवर्धन : *डहेलिया* के पौध को बीज, कटिंग, एवं कन्दों द्वारा तैयार किया जाता है। बीज द्वारा पौधों को उगानें की प्रमुख उपयोगिता नई किस्मों के विकास व अलंकृत बागवानी हेतु किया जाता है। बीज द्वारा तैयार पौधों में विविधता अधिक पाई जाती है। जबकि कन्दों व कटिंग विधि से तैयार पौधों में समानता अधिक होती है।

कलम (कटिंग) द्वारा पौधे तैयार करना : इस विधि का प्रयोग मुख्यतः व्यावसायिक उद्यानों में किया जाता है। पुराने पौधों से शाखा का ऊपरी हिस्सा (एपीकल बड), 4–7 इंच लम्बाई की गाँठ (नोड) के नीचे से काटकर कटिंग तैयार की जाती है। इन्हें पौधों की नई शाखाओं से उस समय काटा जाता है कि जब उनके 3–4 पत्तियाँ समूह में आ जाती हैं। इन कलमों को सावधानी पूर्वक काटकर पंक्ति में 2.5 से.मी. की दूरी पर मोरंग में, गमले या क्यारियों में लगाया जाता है तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 8–10 से.मी. रखी जाती है।

कन्दों द्वारा पौधे तैयार करना : यह प्रवर्धन की सबसे सुगम व सर्वोत्तम विधि होती है। इस विधि में कन्दीय जड़ों को अलग–अलग करके लगाते हैं। कन्दों को अलग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक कन्द के साथ तने का कुछ भाग अवश्य रहे ताकि उसकी आँख से नई शाखायें विकसित हो सके। इस प्रकार कन्दीय जड़ों को अलग–अलग करके बुवाई की जाती है, और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक टुकड़े में कम से कम एक से तीन आँखें अवश्य हों।

बुवाई व कन्द लगाने का समय : *डहेलिया* को पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च–अप्रैल के माह मे लगाया जाता है, जबकि मैदानी क्षेत्रों में इसे सितम्बर–अक्टूबर में कन्दों की रोपाई की जाती है।

पौध रोपण की दूरी : कन्दों की रोपाई इनकी किस्मों पर निर्भर करता है। इसकी रोपाई 45–60 से.मी. की दूरी पर करना चाहिए। कन्द लगाते समय ध्यान रखें कि कन्द का उपरी हिस्सा जहाँ से पौधा फुटाव करता है, उस पर किसी भी

चित्र संख्या–2 : केनिया यलो बी

चित्र संख्या–3 : संतोषिमा

प्रकार की क्षति न हो। कन्दो को यदि गमलों में लगाना हो तो एक कन्द एक गमले में लगाना चाहिए और कम से कम 10'' का गमला होना चाहिए।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई : खाद एवं उर्वरक के प्रयोग के बाद सिंचाई करना आवश्यक होता है। पुष्पन काल के समय पानी की कमी पौधों मे नहीं होनी चाहिए। *डहेलिया* का पौधा सूखे के प्रति अत्यन्त सहिष्णु होता है। अतः शुष्क मौसम में प्रतिदिन हल्की सिंचाई करनी चाहिए। पौधों की उत्तम वृद्धि एवं विकास के लिए क्यारियों व गमलों में खरपतवार नहीं होनी चाहिए। इसके लिए समय समय पर निराई–गुड़ाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए जिससे कि पौधे खरपतवार मुक्त रहे।

कलियों की तुड़ाई व सहारा देना : जब पौधों की ऊँचाई लगभग एक फीट हो जाये और 4–6 पत्तियाँ निकल आयें तो उस समय पौधौं के शीर्ष कली को छोड़कर तने की अन्य कलियों को तोड़ देना चाहिए। इससे कि पुष्प का आकार बढ़ जाता है। यह प्रक्रिया डबल पुष्प वाले प्रजातियों में की जाती है। जब *डहेलिया* के पौधे बड़े हो जाते हैं और पुष्प कलियाँ निकलना आरम्भ हो जाती हैं तब पौधों को बाँस की डण्डी से बाँधकर सहारा देना उचित रहता है। इससे कि पौधे व पुष्प टूटकर नीचे गिरते नहीं।

खुदाई एवं कन्दों का रख रखाव : पौधों से फूल समाप्त होने के बाद पत्तियाँ सूखने लगती हैं। मैदानी क्षेत्रों में अप्रैल के अन्त तक पहाड़ी क्षेत्रों में नवम्बर माह में कन्दों को निकाल कर पीट माँस या लकड़ी की ट्रे में बालू–रेत के अन्दर दबाकर शीतगृह में 4–7°C तापक्रम पर या किसी छायादार स्थान पर रख कर संरक्षित कर किया जाता है। खुदाई के तुरन्त बाद ठन्डे हवादार स्थान पर रखना चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में कन्दों को जमीन के अन्दर भी छोड़ सकते हैं और अगले वर्ष वहाँ से निकाल कर अन्य क्यारियों में लगाया जा सकता है।

कन्द लगाते समय निम्न बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. कन्द लगाते समय स्वस्थ कन्दों का चयन करना चाहिए।
2. कन्द लगाने के पूर्व कन्दों को डाइथेन–एम–45 के 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर उपचारित कर लेना चाहिए।
3. अच्छे भण्डारण के लिए 4–7°C तापक्रम होना चाहिए।
4. कन्दों को अलग करने के लिए हमेशा तेज धार युक्त चाकू का प्रयोग करना चाहिए।
5. गर्मी के मौसम में पौधों में आर्द्रता बनाये रखने के लिए फुहार वाले हजारे का प्रयोग पानी देने के लिए करना चाहिए।
6. रोगों के बचाव के लिए गंधक का चूर्ण या केल्थेन से उपचारित कर कन्दों को रेत में दबाना चाहिए।
7. उचित समय पर कन्दों को निकाल कर उचित विधि से लगाना चाहिए।

रोग एवं कीट नियन्त्रण : इस कुल के पौधों पर रोग एवं कीट का प्रकोप कम होता है। कभी–कभी एफिड, टिड्डी, रेड विटिल, एवं सलभ कीट पौधों पर आक्रमण करके नुकसान पहुँचाते हैं। एफिड पत्तियों का रस चूसता है। इसके रोकथाम के लिए रोगोर या मोनोक्रोटोफॉस नामक दवा का 0.02% घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। *डहेलिया* के पौधों पर आसिता रोग (पाउड्री मिल्ड्यु) तथा मूल ग्रन्थि रोग का प्रकोप होता है। इसके नियन्त्रण हेतु कॉपर सल्फेट के घोल का छिड़काव 10 दिनों के अन्तराल पर दो बार किया जा सकता है। मूल ग्रंन्थि रोग में कन्द अनियन्त्रित आकार के हो जाते हैं तथा उन पर गाँठे बन जाती हैं, ऐसे पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

मेरा जीवन मेरा सन्देश है

–महात्मा गांधी

झाड़ी एवं झाड़ी पट्टी

गिरधारी शर्मा, राजीव कुमार, शंकर वर्मा एवं एस. के. तिवारी
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

क्षुप या झाड़ियाँ एक प्रकार के छोटे वृक्ष होते हैं जिनका तना काष्ठीय होता है। ये बहुवर्षीय होते हैं तथा इनमें बहुत सी शाखायें जड़ के पास से निकलती हैं, इसलिए इनका मुख्य तना स्पष्ट नही होता है। ये सदाबहार तथा पर्णपाती दोनों प्रकार के होते हैं। सदाबहार झाड़ियों की वृद्धि की गति बहुत तेज होती है।

झाड़ियों का महत्व –

उद्यान की शोभा बढ़ानें के लिए झाड़ियाँ बहुत उपयोगी हैं। बहुत सी सुन्दर एवं खूबसूरत झाड़ियाँ सुन्दरता एवं स्वच्छता बढ़ाती हैं तथा मन मोहक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। ये लम्बे समय तक लगी रहती हैं और इनसे विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ भी बनायी जाती हैं। बहुत सी झाड़ियों वाले पौधे एक स्थान पर संयुक्त प्रभाव उत्पन्न करते हैं। झाड़ियों को लॉन के किनारे एवं बड़े वृक्षों के आगे लगाने के प्रयोग में लाया जाता है।

झाड़ियों का वर्गीकरण –

उद्यान में झाड़ियों को लगाने के लिए तीन प्रमुख वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

1. सुन्दर पत्तियों एवं आकृति के लिए उगायी जाने वाली झाड़ियाँ ।
2. आकर्षक फूल एवं सुगन्ध के लिए उगायी जाने वाली झाड़ियाँ ।
3. आकर्षक फलों तथा फूलों के लिए उगायी जाने वाली झाड़ियाँ ।

झाड़ियों की पट्टी का योजनीकरण –

जब झाड़ीदार पौधों को एक निश्चित स्थान पर उनकी ऊँचाई, पत्तियों की आकृति तथा फूलों के रंगों के अनुसार क्रमबद्ध व्यवस्था से लगाये जाते है तो उसे झाड़ियों की पट्टी कहते हैं। शरबरी बार्डर उद्यानों के लिए बहुत उपयोगी होती है। इनकी चौड़ाई पौधों की ऊँचाई पर निर्भर करती हैं।

झाड़ी पट्टी के रेखांकन के सिद्धान्त –

झाड़ी पट्टी के रेखांकन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. झाड़ी पट्टी को बड़े वृक्षों की छाया से जहाँ तक सम्भव हो बचाना चाहिए। इसलिए झाड़ी पट्टी को वृक्षों की पंक्ति से 4. 5–6 मीटर की दूरी पर छोड़कर लगाना चाहिए।
2. झाड़ियों को पूरब एवं दक्षिण दिशा में लगाने से उत्तम प्रभाव दिखायी पड़ता है।
3. झाड़ियों की पट्टी का उपयोग गन्दे स्थानों को ढकने, नौकरों के मकान को अलग करने व किचेन गार्डेन को अलग करने के लिए किया जाता है।
4. प्रत्येक क्यारी में कम से कम तीन पंक्तियाँ लगानी चाहिए।
5. झाड़ियों की पट्टियों की स्थिति बड़े वृक्षों के सम्मुख रखने से अधिक सुन्दर दृश्य उत्पन्न होता है।
6. ध्यान रखें कि लगायी जाने वाली झाड़ियाँ अलग–अलग समय पर फूल देने वाली हों।

रोपण के लिए भूमि की तैयारी –

झाड़ियों की पट्टी के लिए निश्चित स्थान पर भूमि की तैयारी ग्रीष्म ऋतु में करना चाहिए जिससे कि बरसात के आरम्भ में पौधों को रोपण किया जा सके। इसके लिए भूमि 60 से.मी. गहराई तक खोदना चाहिए। ऊँचे–नीचे स्थान को समतल कर देना चाहिए, साथ ही साथ भूमि के अंदर से पौधों की जड़ों, खर–पतवारों को सावधानीपूर्वक निकाल देना चाहिए। इसके बाद गोबर की खाद, कम्पोस्ट की खाद की 7–10 से.मी. मोटी तह लगाकर भूमि के ऊपर 30 से.मी. गहराई तक अच्छी प्रकार मिलाकर इस क्षेत्र की सिंचाई करके समतल कर देना चाहिए। इसके बाद भूमि का रेखांकन करते हैं। योजनानुसार पूरे क्षेत्र को क्यारियों में विभाजित करते हैं क्योंकि क्यारियों का आकार झाड़ियों की लम्बाई के अनुसार रखा जाता है।

ऊँची जाति की झाड़ियों के लिए लगभग 6 मीटर, मध्यम ऊँचाई की झाड़ियों के लिए 4–5 मीटर तथा छोटी झाड़ियों के लिए 3 मीटर लम्बी क्यारियाँ बनायी जाती हैं। क्यारियों की चौड़ाई,

चित्र संख्या–1 : झाड़ी पट्टी (शरबरी बार्डर)

झाड़ियों की फैलान के अनुसार रखी जाती है। तथा झाड़ियों के लगाने के स्थान पर 60X60X60 से.मी. आकार के गड्ढे खोदकर मिट्टी तथा खाद डालकर भर दिया जाता हैं।

झाड़ी लगाने की विधि –

उद्यान में पेड़–पौधे लगाना एक कलात्मक कृति है। चूँकि झाड़ी पट्टी उद्यान का स्थायी अंग है इसलिए झाड़ियों को पट्टी (शरबरी बार्डर) में लगाने के लिए सावधानीपूर्वक चयन उनकी ऊँचाई, फूल आने के समय व पत्तियों के रंग तथा आकार–प्रकार, वृद्धि तथा स्वभाव के आधार पर करना चाहिए। छोटी झाड़ी सबसे आगे, मध्यम ऊँचाई वाले बीच में तथा लम्बी झाड़ी वाले पौधे को सबसे पीछे की पंक्तियों में लगाये जाते हैं। पर्णपाती झाड़ी को आगे की ओर नहीं लगाना चाहिए क्योंकि पर्णपात होने पर सामने से ये भद्दी प्रतीत होती हैं। पर्णपाती को कभी भी एक समूह में नहीं लगाना चाहिए। इन्हें सदैव सदाबहार झाड़ी के बीच–बीच में लगाना चाहिए। फूल आने के समय को ध्यान में रखते हुए झाड़ियों का झाड़ी पट्टी में वितरण इस तरह होना चाहिए कि वर्ष भर झाड़ी पट्टी मे फूल खिलते रहें। सामान्यतः क्यारी में एक ही जाति के पौधे लगाये जाते है किन्तु अलग–अलग जातियों के पौधे भी लगाये जा सकते हैं। ये विपरीत रंग जैसे– लाल, हरा, नांरगी, नीला पीला एवं गुलाबी हो सकते हैं। एक रंग की शेड्स के पौधों को लगाने से समानता का आभास होता है। लम्बे जाति के झाड़ी क्यारी में 2 मीटर, मध्यम जाति की झाड़ी 1.5 मीटर तथा छोटे आकार की झाड़ी 1.00 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए।

झाड़ीदार पट्टी की देखभाल –

नए लगाये गये पौधों की निरन्तर सिंचाई तथा निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। नये पौधों को सीधा रखने के लिए सहारा देना चाहिए। झाड़ीदार पट्टी विभिन्न प्रकार के पौधों का समूह होता है। अतः प्रत्येक प्रकार की झाड़ीदार पौधों की उनकी स्वभाव व आवश्यकता के अनुसार काँट–छाँट करते रहना चाहिए। सदाबहार पौधे यदि काँट–छाँट से सम्बन्धित हो तो यह कार्य जनवरी–फरवरी में कर देना चाहिए। रोगी, मृत तथा उलझी हुई शाखाओं को काटकर अलग कर देना चाहिए ।

झाड़ीदार पौधों को सुन्दर बनाये रखने, स्वस्थ तथा अच्छी वृद्धि के लिए खाद देना आवश्यक होता है। काँट–छाँट के बाद नई वृद्धि तथा विकास के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता है। प्रतिवर्ष फरवरी–मार्च में गोबर की खाद या कम्पोस्ट आवश्यकतानुसार मात्रा में 15–20 से.मी. ऊपरी सतह की भूमि में मिला देनी चाहिए। रोग एवं कीड़ों से बचाव के लिए आवश्यकतानुसार फफूँद नाशक दवाओं का छिड़काव करना चाहिए।

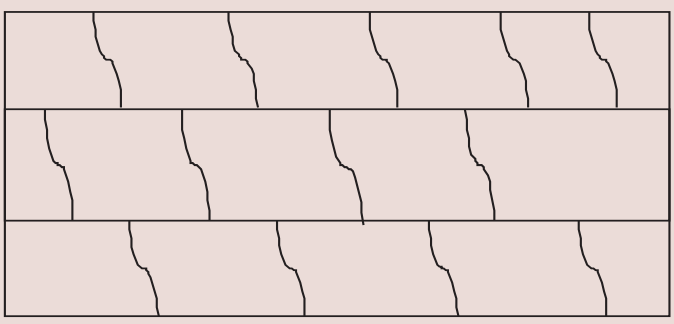

झाड़ी पट्टी का उपयुक्त ले आउट नमूना

कुछ फूल वाली झाड़ियों का विवरण

ऊँची झाड़ियाँ (2 से 4 मीटर)

क्र.	प्रजाति	फूलों का रंग
1.	*हेमेलिया पेटन्स*	लाल
2.	*टिकोमा स्टान्स*	पीला
3.	*थिवेटिया नेरीफोलिया*	पीला,सफेद,नांरगी
4.	*मुराया एक्जोटिका*	सुगंधित सफेद
5.	*लेजरस्ट्रोमिया इण्डिका*	सफेद, लाल, गुलाबी
6.	*निक्टेन्थस आरवोरट्रिस्टिस*	सफेद व लाल केन्द्र
7.	*सिजलपीनिया पुल्चेरिमा*	पीला,लाल
8.	*एक्जोरा पर्वीफ्लोरा*	सफेद सुगन्धित
9.	*नेरियम ओलीएन्डर*	सफेद गुलाबी

मध्यम ऊँचाई की झाड़ियाँ (1 से 2 मीटर)

क्र.	प्रजाति	फूलों का रंग
1	*जेट्रोफा पेन्डुरिफोलिया*	लाल, गुलाबी
2	*एक्जोरा काक्सीनिया*	लाल
3	*बडेलिया मेडागास्केरियेन्सिस*	पीला
4	*हिबिस्कस रोजा साइनेन्सिस*	लाल
5	*मुसेन्ड्रा*	नारंगी लाल
6	*गार्डिनिया फ्लोरिडा*	सफेद सुगन्धित
7	*डुरान्टा प्लुमैराई*	नीले फूल व नारंगी बैरीज
8	*लेमोनिया स्पेक्टाबिलीस*	गुलाबी
9	*कैरियोप्टेरिस मेस्टाकेन्थिस*	बैंगनी
10	*सेस्ट्रम नाक्टरनम*	सफेद सुगन्धित

कम ऊँचाई की झाड़ियाँ (1 मीटर तक ऊँचाई)

क्र.	प्रजाति	फूलों का रंग
1	*डिडैलाकैन्थस नरवोसस*	नीला, पीला
2	*रूसेलिया जून्सिया*	लाल
3	*लैन्टाना ड्रिप्रेसा*	पीला
4	*इक्जोकेरिया बाइकलर*	हरी व क्रीमसन पत्तियाँ
5	*जैसमीनम सम्बक*	सफेद सुगन्धित
6	*एकेलिफा*	लाल पत्तियाँ
7	*जैसमीनम प्यूबीसेन्स*	सफेद सुगन्धित
8	*स्पाइरिया कोरिम्बोसा*	बैगनी
9	*वारलेरिया क्रिस्टाटा*	नीला, पीला
10	*गाल्फीनिया ग्रेसीलीस*	पीला ऊँची (2–4मीटर)

पर्यावरण सूचना प्रणाली का सामाजिक योगदान

सुनील त्रिपाठी, दिवाकर सैनी, अंजू पटेल एवं पंकज कुमार श्रीवास्तव
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पर्यावरण सूचना प्रणाली का प्रारम्भ सन् 1982–83 ई. में किया गया था। पर्यावरण सूचना प्रणाली को हम संक्षेप में "एनविस" के नाम से भी जानते हैं। एनविस का उद्देश्य वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्ताओं, नीति नियोजकों एवं जनमानस तक पर्यावरण से सम्बंधित वैज्ञानिक जानकारियों को एकत्रित, संकलित एवं प्रसारित करना है।

आज पूरे देश में एनविस के 66 केन्द्र पूर्णतया स्थापित एवं क्रियाशील हैं, जिनमें 31 राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में उनके प्रादेशिक पर्यावरण एवं वन विभागों द्वारा संचालित किये जाते हैं। 35 केन्द्र देश के विभिन्न संस्थानों में उनकी विषय विशेषज्ञता के अनुकूल, विशिष्ट विषयों पर आधारित है। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में एनविस केन्द्र की स्थापना सन् 2003 में हुई एवं सन् 2005 में यह केन्द्र "पौधे एवं प्रदूषण" विषयक केन्द्र के रूप में पूरी तरह से क्रियाशील हो गया। हम सभी यह बात भली–भाँति जानते हैं कि पौधे हमारे जीवन में विशेष महत्व रखते हैं। यह प्राथमिक उत्पादक की तरह सूर्य से ऊर्जा को भोज्य पदार्थों में परिवर्तित करते हैं, साथ ही हमें श्वसन हेतु आवश्यक ऑक्सीजन भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण में उपस्थिति हानिकारक एवं जानलेवा प्रदूषक गैसों, जैसे कि कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स, हाइड्रोकार्बन एवं वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों को अवशोषित करके हमें इनके हानिकारक प्रभावों से भी सुरक्षा प्रदान करते हैं। अतः पौधों की प्रदूषण निम्नीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान का एनविस केन्द्र "पौधे एवं प्रदूषण" के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रमुख रुप से कार्य करता है –

1. पौधे एवं प्रदूषण विषय पर वेबसाइट का निर्माण करना तथा उसे समय–समय पर नई–नई जानकारियों से अद्यतन करना।
2. पौधे एवं प्रदूषण पर सूचनाओं को एकत्रित, संकलित एवं प्रसारित करना।

3. "पौधे एवं प्रदूषण" विषय पर आधारित समाचार पत्रों का त्रैमासिक प्रकाशन करना एवं उन्हें जनमानस तक पहुँचाना।
4. सम्बंधित विषय पर आधारित जनमानस द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर प्रदान करना।
5. विद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य स्थानों पर गोष्ठियों का आयोजन कर लोगों को पौधों एवं उनकी प्रदूषण को कम करने की भूमिका के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करना।

गतिविधियाँ जैसे कि स्कूलों में बच्चों को प्रशिक्षण, पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम, किसान मेले एवं विभिन्न आयोजनों में केन्द्र की भागीदारी की जानकारियाँ "प्रमुख गतिविधियाँ" शीर्षक के अन्तर्गत आती है।

किताबें : पर्यावरण संरक्षण से सम्बंधित पुस्तकों की जानकारी इस वेबसाइट के माध्यम से आसानी से एकत्रित की जा सकती है।

रिसर्च पेपर : पर्यावरण एवं प्रदूषण से सम्बंधित शोध–पत्रों को इस शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है।

एनविस–एन०बी०आर०आई० वेबसाइट : सूचना शीर्ष का सारांश

http://www.nbrienvis.nic.in/

न्यूजलेटर : एनविस केन्द्र द्वारा सम्बन्धित विषय पर आधारित न्यूजलेटर्स का त्रैमासिक प्रकाशन किया जाता है, जिसमें "पौधे एवं प्रदूषण" विषयक पर लेख एवं अन्य समाचारों का प्रकाशन किया जाता है।

विषयक समाचार : इस शीर्षक के अन्तर्गत एक विशेष विषय आधारित समाचारों का प्रकाशन एनविस केन्द्र द्वारा किया जाता हैं।

आगामी कार्यक्रम : विषय से सम्बंधित होने वाले आगामी सेमिनार एवं कार्यशालाओं की जानकारी इस शीर्षक में उपलब्ध रहती है।

प्रमुख गतिविधियाँ : एनविस केन्द्र द्वारा विभिन्न प्रकार की

डाटाबेस : विभिन्न तरह के डाटाबेसों जैसे भारी धातु, कीटनाशक, खरपतवार नाशक, अम्लीय वर्षा आदि पर्यावरण को प्रभावित करने वाले कारकों इस लिंक पर जाकर नई–नई जानकारियों को एकत्रित किया जा सकता है।

ग्रंथ सूची : विभिन्न विषयों जैसे जलवायु परिवर्तन, आर्सेनिक प्रदूषण आदि विषयों की ग्रन्थ–सूची को भी आसानी से देखा एवं डाउनलोड किया जा सकता है।

थीसिस : पौधे एवं प्रदूषण पर आधारित शोध ग्रन्थों की विस्तृत जानकारी इस वेबसाइट पर उपलब्ध है।

फोटोगैलरी : एनविस केन्द्र द्वारा की गई गतिविधियों की फोटो इस लिंक पर जाकर आसानी से देखी जा सकती है।

बच्चों के केन्द्र : इस शीर्षक में बच्चों के लिये पर्यावरण संरक्षण से सम्बंधित वीडियों का अनूठा संकलन है।

ई–समाचार : हर माह दो बार (पन्द्रह दिनों के अन्तराल पर) ई–समाचारों को विभिन्न माध्यमों से एकत्र कर के उपभोक्ताओं हेतु इस वेबसाइट पर अपलोड किया जाता है।

एनविस केन्द्र पोस्टर : "पौधे एवं प्रदूषण" पर आधारित विभिन्न सामग्रियों को एकत्र कर पोस्टर के माध्यम से इस वेबसाइट पर अपलोड किया जाता है।

पेटेन्ट : नये–नये पेटेन्टस को जो कि नवीन अविष्कारों के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं जो इस वेबसाइट पर सूचीबद्ध कर के प्रदर्शित किया गया है।

एन.बी.आर.आई का एनविस केन्द्र, सूचना एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपनी वेबसाइट के द्वारा पर्यावरण से सम्बंधित सूचनाओं को बहुत आसानी से जनसामान्य तक प्रसारित करने हेतु कटिबद्ध है। इस वेबसाइट में समस्त जानकारियाँ जैसे समाचार पत्र, नवीन समाचार, विषय पर आधारित पुस्तकें, आगामी होने वाले कार्यक्रम एवं संगोष्ठियाँ तथा वीडियों का अद्भुत संग्रह उपस्थित है, जो कि किसी भी व्यक्ति द्वारा देखा एवं उपयोग किया जा सकता है।

इसके साथ ही एनविस केन्द्र द्वारा एनड्रॉइड एप एवं आईओएस एप का निर्माण किया गया है जिसको हम "ग्रीन प्लानर" एप के नाम से जानते हैं। यह एप गूगल प्ले स्टोर एवं आई–ट्यून्स उपयोगकर्ताओं हेतु निःशुल्क उपलब्ध है। इस एप के द्वारा हम सड़क के किनारे, सड़क विभाजक के मध्य में, घर के अन्दर एवं हरित पट्टिका में प्रयुक्त होने वाले पौधों के विषय में सरलता से विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भारत सरकार के कौशल विकास मंत्रालय के सहयोग से एनविस– एन.बी.आर.आई. द्वारा विगत दिनों में भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा प्रायोजित निम्नलिखित दो अखिल भारतीय स्तर के हरित कौशल विकास कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

1. प्रदूषण निरीक्षण : मृदा प्रदूषण

2. उद्योगों हेतु हरित पट्टिका का विकास

उपरोक्त दोनों कार्यक्रमों में देश भर के विभिन्न राज्यों के प्रतिभागियों ने एक–एक माह (200 घंटों) का प्रशिक्षण प्राप्त किया, तद्उपरान्त उन्हें मंत्रालय द्वारा प्रमाण पत्र भी प्रदान किये गये। भविष्य में प्रशिक्षार्थियों को रोजगार स्वरोजगार उपलब्ध कराने हेतु भी यह केन्द्र प्रयासरत है।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान का यह एनविस केन्द्र विज्ञान के जटिल सवालों का उपलब्ध हल बहुत ही सरलता एवं सुगमता से जनसामान्य तक पहुँचाने हेतु कटिबद्ध है। इस केन्द्र के अथक एवं निरंतर प्रयासों द्वारा ही जनसाधारण को प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों, पौधों द्वारा उनके बचावों से अवगत करने एवं समाज में जागरुकता फैलाने का कार्य पिछलें कई वर्षों से निरंतर किया जा रहा है।

राष्ट्रीय पर्यावरण सर्वेक्षण

भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय पर्यावरण सर्वेक्षण कार्यक्रम को एनविस केंद्रो के माध्यम से पूरे देश भर में लागू किया गया है। यह एक ग्रिड आधारित कार्यक्रम है जिसमें 9X9 कि०मी० के भागों में पूरे जिले को बाँट कर सर्वेक्षण किया जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य पूरे देश के हर राज्य के प्रत्येक जिलों में पर्यावरण के विभिन्न घटकों पर आधारित सूचनाओं को एकत्रित तथा प्रसारित करना है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश भर के कुल 723 जिलों के पर्यावरण आधारित आँकड़ों को एकत्र किया जायेगा जिसमें कि 3–4 वर्षो का समय लगेगा। इस कार्यक्रम के अंतर्गत पर्यावरण आधारित घटकों जैसे वायु, जल, एवं मृदा प्रदूषण के तकनीकी, स्थानिक एवं अल्पकालिक आँकड़ों को एकत्रित, संकलित एवं प्रसारित किया जाना है।

सी०एस०आई०आर०–एन०बी०आर०आई को इस कार्य हेतु पादप एवं मृदा प्रदूषण के आँकड़ों को एकत्रित, संकलित एवं पुष्टि करने के लिए उत्तर प्रदेश के 4 मंडलों के 19 जिलों को आंवटित किया गया है, जिनमें :

1. **चित्रकूट मंडल** : बाँदा, चित्रकूट, हमीरपुर, महोबा
2. **देवीपाटन मंडल** : बहराइच, बलरामपुर, गोण्डा, श्रावस्ती
3. **लखनऊ मंडल** : लखनऊ, हरदोई, लखीमपुर खीरी, रायबरेली, सीतापुर, उन्नाव
4. **फैजाबाद मंडल** : अम्बेडकर नगर, अमेठी, बाराबंकी, फैजाबाद, सुल्तानपुर

जीत निश्चित हो तो कायर भी
लड़ सकता है
बहादुर तो वह है जो हार निश्चित हो
फिर भी मैदान न छोड़े

– डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

क्रिस्पर–कैस तकनीक से कोरोना वायरस का परीक्षण

विकास एवं सौमेन घोष
आंचलिक विज्ञान नगरी, लखनऊ

कोरोना वायरस एक प्रकार का प्रोटीन है जो कोविड–19 नाम से चीन में उत्पन्न हो कर जो कई देशों की यात्रा करते हुए हमारे देश में दाखिल हुआ। यह हम लोगों के स्वास्थ्य के प्रति ही नहीं बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था, हमारी जीवन शैली, आने वाली पीढ़ी के शिक्षण व रोजगार के लिए एक युद्ध के दुष्परिणामों की तरह है। हमारे देश के नेताओं एवं प्रशासनिक अधिकारियों के सामने इस वैश्विक महामारी से होने वाले नुकसान व इसको फैलने से रोकने की चुनौती है। साथ ही साथ देश के डॉक्टरों व वैज्ञानिकों के सामने कोरोना वायरस (कोविड–19) की घुसपैठ का पता लगाने व उपचार की चुनौती है।

कोविड–19 हमारे श्वसन तंत्र के रास्ते हमारे शरीर में प्रवेश करता है तथा दूसरे वायरसों की ही भांति हमारी स्वस्थ कोशिकाओं के डी. एन. ए. पर कब्जा करता है। सोचने में थोड़ा अजीब लगेगा कि तीस हजार न्यूक्लिओटाइड वाला छोटा सा कोरोना वायरस का वायरल जीनोम मानव के 3 अरब न्यूक्लिओटाइड वाले जीनोम पर भारी पड़ता है। हमारे डी. एन. ए. पर कब्जा जमाने के बाद वायरस कोशिकाओं का मालिक बन जाता है और हमारी कोशिकाएं उसकी गुलाम। वैज्ञानिकों ने उन्तीस ऐसी प्रोटीन का पता लगाया जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को दबाता है। उन प्रोटीनों का निर्माण कोरोना वायरस द्वारा हमारी कोशिकाओं से कराया जाता है। संक्रमित कोशिकाओं में सबसे पहले बनने वाली प्रोटीन वास्तव में सोलह एंजाइमों व प्रोटीनों की श्रृंखला है जो कैंची की तरह, प्रोटीन को अलग करने, जोड़ने जैसे कार्य करने के लिए डिजाइन होती हैं। इनमें से कुछ प्रोटीन इतनी रहस्यमयी हैं जिनके बारे में वैज्ञानिकों को अभी तक कुछ पता नहीं चल पाया है। वायरल जीनोम हमारी कोशिकाओं की प्रतिरोधक क्षमता लगातार घटाती जाती हैं। हमारी कोशिकायें वायरस के कारखाने की तरह कार्य करना शुरू कर देतीं है जिनसे नए वायरस उत्पन्न होने लगते हैं । यह अन्य कोशिकाओं को संक्रमित करते जाते हैं। लगातार संक्रमित होती कोशिकाएं हमारे लिए प्राणघातक भी हो सकती है। वर्तमान में हमारे सामने तीन चुनौतियाँ हैं– पहली परीक्षण द्वारा संक्रमितों की पहचान करना, दूसरी संक्रमितों का उपचार एवं तीसरी स्वस्थ लोगों को टीका उपलब्ध कराना। सम्पूर्ण विश्व में वैज्ञानिक कोविड–19 के उपचार, टीके, जांच किट एवं संबन्धित उपकरणों को खोजने व विकसित करने में जी जान से लगे रहे। उपयुक्त तीनों चुनौतियों मे सबसे महत्वपूर्ण है संक्रमितों की पहचान करना। लोगों मे संक्रमण का पता लगाने के लिए मुख्य रूप से रैपिड परीक्षण किट एवं आरटीपीसीआर (रियल टाइम पोलिमेरेज चेन रिएक्शन) तकनीक का सहारा लिया जा रहा है ।

वर्तमान में परीक्षण एवं उनके परिणाम

वर्तमान में लोगों में संक्रमण का पता लगाने के लिए रेपिड परीक्षण किट एवं आरटी पीसीआर तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। सर्वप्रथम परीक्षण रेपिड परीक्षण किट द्वारा किया जाता है जो की एक सीरोलोजिकल टेस्ट है जिसके अंतर्गत रक्त के नमूने में एंटीबोडी की उपस्थिति को पहचान कर संक्रमण का पता लगाया जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी वायरस से संक्रमित होता है तो उसके शरीर में उस वायरस से लड़ने के लिए एंटीबॉडीज बनती हैं। रैपिड टेस्ट में उन्हीं एंटीबॉडीज का पता लगाया जाता है। इस टेस्ट में समय कम लगता है एवं कीमत भी मात्र पाँच सौ रूपये है। अतः भारत में इन किटों का आयात चीन से किया गया था परंतु ये प्रभावशाली साबित नहीं हुईं क्योंकि ये किट संक्रमण के 5 से 6 दिन बाद ही संक्रमित व्यक्तियों को पहचानने में सक्षम है। इसके कारण शुरुआती संक्रमण इससे बच जाते हैं।

आर.टी.पी.सी.आर. परीक्षण :

अब तक कोरोना वायरस के परीक्षण की सबसे विश्वसनीय तकनीक रही है आरटी पीसीआर (रियल टाइम पोलिमेरेज चेन रिएक्शन) तकनीक जिसके अंतर्गत लोगों का स्वैब सैंपल लिया जाता है । यह प्रक्रिया जटिल हो जाती है क्योंकि कोविड–19 एक आर.एन.ए. वायरस है। इसके कारण इस प्रक्रिया में पहले रिवर्स ट्रांसक्रिपटेज नामक एंजाइम द्वारा वायरस के आर.एन.ए. से डी.एन.ए. बनाया जाता है, तत्पश्चात निर्मित डी.एन.ए. की पैतीस अरब कॉपी बनाई जाती है। उन डी.एन.ए. की कॉपियों में मार्कर व फ्लोरोसेंट डाई की सहायता से मरीज के नमूने में वायरस के जीनोम के सबूत खोजे जाते हैं। इस तकनीकी से परिणाम यद्यपि तुरंत नहीं मिलते। इस टेस्ट का व्यय लगभग चार हजार पाँच सौ रुपये आता है। इस टेस्ट के लिए कुशल कर्मचारी एवं उच्च श्रेणी की प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। अतः यह टेस्ट उन लोगों के पुष्टि के लिए किया जाता है जिनका रेपिड टेस्ट पॉजिटिव आया हो।

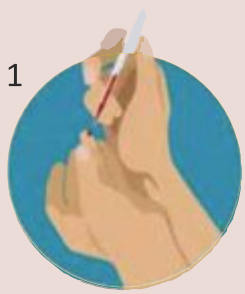

रक्त का नमूना

एंटीजन–एंटीबॉडी प्रतिक्रिया हेतु रक्त को वेल में डालना

प्रतिक्रिया हेतु बफर डालना

परिणाम

आरटी–पीसीआर परीक्षण

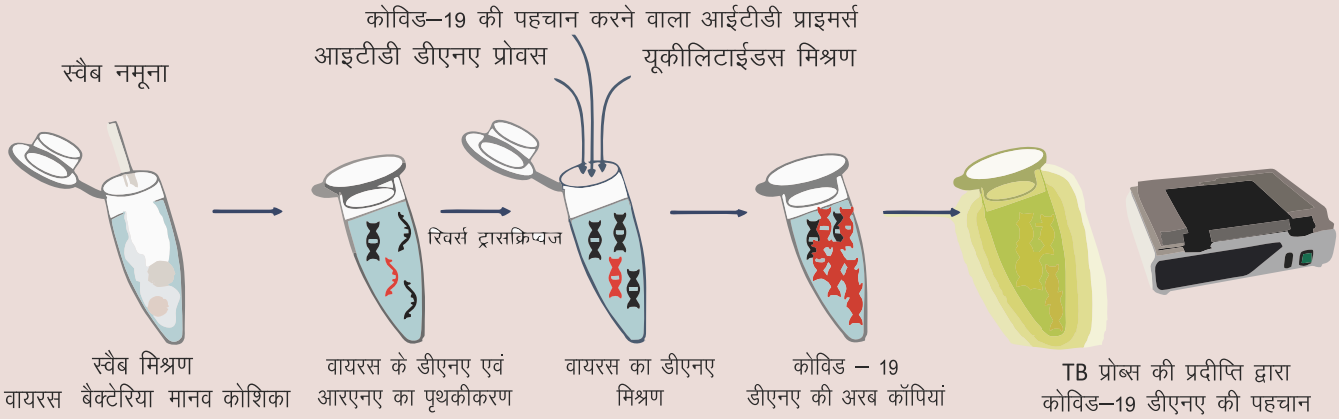

परीक्षण के क्षेत्र में क्रांतिकारी तकनीक का आविष्कार :

रेपिड परीक्षण किट व आरटी–पीसीआर के अलावा वैज्ञानिकों द्वारा संक्रमित व्यक्ति में कोरोना के जीनोमिक अनुक्रम की पहचान के लिए जीन संपादन तकनीक क्रिस्पर–कैस आधारित नई परीक्षण किट संयुक्त राज्य अमेरिका के एमआईटी और ब्रॉड इंस्टीट्यूट में मैकगवर्न इंस्टीट्यूट के जीवविज्ञानी फेंग झांग के नेतृत्व में उनकी टीम द्वारा विकसित की गई है। इस दिशा में भारत के वैज्ञानिक भी निरंतर प्रयासरत है। सीएसआईआर–इंस्टीट्यूट ऑफ जीनोमिक्स एंड इंटेग्रेटिव बायोलॉजी, नई दिल्ली के वैज्ञानिक डॉ. सौविक मैती व डॉ. देबज्योति चक्रबोर्ती द्वारा क्रिस्पर–कैस आधारित फेलूदा (FNCAS9 Editor Linked Uniform Detection Assay) नामक स्वदेशी टेस्टिंग किट विकसित कर ली गयी है। इस किट को भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद की अनुमति के पश्चात टाटा संस द्वारा व्यावसायिक उत्पादन किया जाएगा जिसके लिए मेमोरेंडम ऑफ अण्डरस्टैंडिंग पर हस्ताक्षर हो चुके है। जल्द ही स्वदेशी फेलूदा किट बाजारों में उपलब्ध होगी।

क्रिस्पर–कैस परीक्षण किट :

यह क्रिस्पर–कैस परीक्षण किट (Clustered Regularly Interspaced short Palindromic Repeats) पेपर–स्ट्रिप आधारित परीक्षण किट है। इसकी मदद से कम समय एवं सटीकता से संक्रमण का पता लगाया जा सकता है। इस किट में पेपर की पट्टी पर एक सोलियुशन की परत होती है जिस पर नमूने से निकले कोरोना वायरस के आर.एन.ए. के संपर्क मे आते ही एक खास तरह का बैंड दिखने लगता है। इससे पता चलता है कि मरीज कोरोना पॉजिटिव है या नहीं। यह किट आर्थिक रूप से किफायती है जिसमें लगभग चार सौ पचास रुपये प्रति व्यक्ति का व्यय होता है। इस परीक्षण में परिणाम लगभग चालीस मिनट में मिल जाते हैं एवं दक्षता के मामले में सबसे सटीक है। इसको इस्तेमाल करना आसान है, बिलकुल प्रेग्नेंसी परीक्षण किट की तरह कोई भी इससे परीक्षण कर सकता है।

क्रिस्पर–कैस तकनीक कई वर्ष पहले जीन में बदलाव करने के लिए विकसित की गयी थी। इसके अंतर्गत डी. एन. ए. के विशेष जीन को लक्षित करके आणविक कैंची से काटकर दूसरे टुकड़े से बदला जा सकता है एवं उनको एंजाइम रूपी संकेतकों से टैग भी किया जा सकता है। कोरोना वाइरस के परीक्षण में क्रिस्पर–कैस नामक एंजाईम का उपयोग किया जाता है। क्रिस्पर–कैस को नमूने के जीनोम मे जैसे ही लक्षित अनुक्रम मिलता है, यह उस लक्ष्य को काट देता है और ऐसा करने के दौरान यह एक सिग्नल जारी करता है। यह तकनीकी बहुत ही सटीक रूप से पहचान कर सकती है कि नमूने से प्राप्त डी.एन.ए. या आर.एन.ए. में मूल रूप से वायरस के डी.एन.ए. का अनुक्रम है या नहीं।

क्रिस्पर–कैस परीक्षण किट सस्ती है और हर नागरिक इसका इस्तेमाल घर पर आसानी से कर सकता है। यह किट लोगों में सामाजिक व शारीरिक दूरी बनाये रखने एवं इस त्रासदी से हो रहे नुकसान को कम करने में मदद करेगी। निश्चित तौर पर क्रिस्पर–कैस परीक्षण किट कोरोना वायरस से जंग लड़ने में अब तक का सबसे दक्ष हथियार साबित हुआ है।

कोरोना वायरस संक्रमण की क्रिस्पर–कैस तकनीक पर आधारित परीक्षण

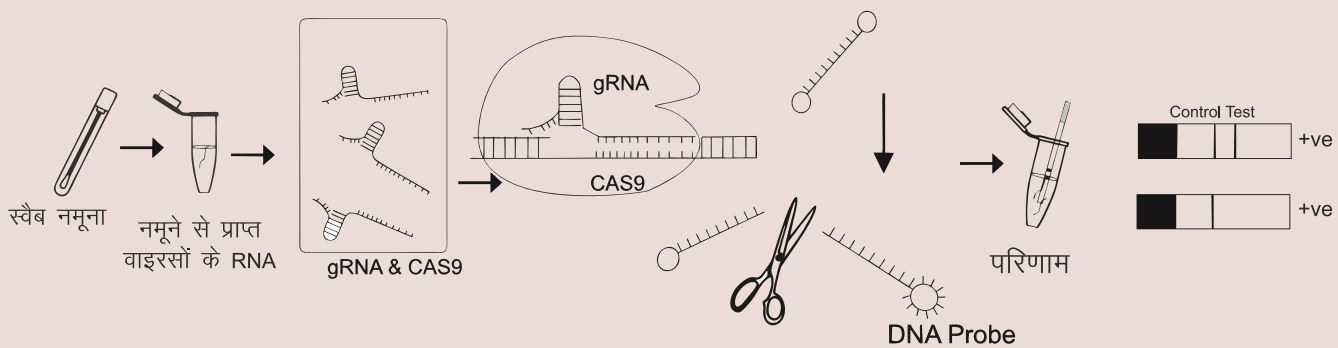

विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकास : जिज्ञासा

विवेक श्रीवास्तव, भरत लाल मीना एवं स्वाति शर्मा
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

देश के विकास एवं आधारभूत संरचना को विकसित करने में उसकी शिक्षा व्यवस्था, अनुसंधान एवं विकास की क्षमता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। देश के बच्चे एवं युवा ही देश का भविष्य होते हैं। अतः इनके लिये शिक्षा पद्धति एवं विद्यालय स्तर पर छात्र–छात्राओं को दी जाने वाली शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को समाहित करने की आवश्यकता है। शिक्षा बच्चों/बालकों के मानसिक विकास में अहम भूमिका निभाती है। इस कारणवश बाल्यावस्था से ही छात्र–छात्राओं में विज्ञान के प्रति रूचि एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करना आवश्यक है।

सीएसआईआर विज्ञान के विभिन्न क्षेत्र में शोध हेतु अग्रणी संस्था है, यह रेडियो ओर अंतरिक्ष भौतिक विज्ञान, समुद्र विज्ञान, भू–भौतिकी, रसायन, औषधि, जीनोमिक्स, जैव प्रौद्योगिकी, सूक्ष्म तकनीकी, खनन वैमानिकी, इंस्ट्रूमेंटेशन, पर्यावरण अभियांत्रिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी विज्ञान इत्यादि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।, इसमें पर्यावरण, स्वास्थ्य, पेयजल, भोजन, आवास, उर्जा, खेत और गैर–कृषि क्षेत्र शामिल हैं। इसके अलावा, रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट, मानव संसाधन विकास में भी सीएसआईआर की भूमिका उल्लेखनीय है।

सीएसआईआर ने विज्ञान के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की है उदाहरणार्थ :

- भारत के पहले सर्व–समग्र विमान हंसा की डिजाइन का विकास, हंसा के बाद सीएसआईआर ने 14–18 सीटों वाले एक प्लेन सारस के डिजाइन का विकास किया।
- दृष्टि ट्रांस्मिसोमीटर तकनीकी का विकास।
- हेड–अप डिस्प्ले तकनीकी।
- दृष्टिबाधितों के लिए दिव्य नयन नामक एक पर्सनल रीडिंग मशीन।
- सांबा मंसूरी चावल की किस्मः सीएसआईआर ने आइसीएआर के साथ मिलकर एक बेहतर बैक्टीरियल व्लाइट प्रतिरोधी सांबा मंसूरी चावल की किस्म विकसित की।
- आर्सेनिक युक्त क्षेत्रों के लिए राइस कल्टीवर (मुक्ताश्री) का विकास।
- सफेद मक्खी प्रतिरोधी कपास की किस्मः एक ट्रांसजेनिक कपास की तकनीकी विकसित की गई जो कि सफेद मक्खी के लिए प्रतिरोधी है।
- देश का सबसे पहला स्वदेशी ट्रैक्टर स्वराज 20 एच पी का अविष्कार, स्वराज ट्रैक्टर के बाद नवीनतम तकनीकी पर आधारित सोनालिका 60 एचपी ट्रैक्टर का अविष्कार।
- पालतू जानवर (गाय, भैस, बकरी, एवं भेंड़) के लिए जे.डी. वैक्सीन।
- मलेरिया की दवाः एलूबकुइन क्लोरोक्वीन व आर्टीथर।
- परिवार नियोजन गोली : सहेली।
- मधुमेह उपयोगी : एनबीआर मैप।

विज्ञान के प्रति रूचि एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के प्रयास में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) ने केन्द्रीय विद्यालय संगठन (केवीएस) जो कि मानव संसाधन विभाग, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्त निकाय है के साथ मिलकर ''जिज्ञासा'' नामक कार्यक्रम की शुरूआत की है। इस कार्यक्रम का राष्ट्रीय स्तर पर लोकार्पण जुलाई 2017 में किया गया। इसको और अधिक व्यापक बनाने के लिए कुछ समय पश्चात, केन्द्रीय विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के साथ नवोदय विद्यालयों व अन्य सरकारी विद्यालयों के छात्रों को भी सम्मिलित किया गया है।

जिज्ञासा कार्यक्रम के उद्देश्य :

राष्ट्रीय स्तर पर अपनी वैज्ञानिक सामाजिक जिम्मेदारी को और अधिक व्यापक करने के लिए जिज्ञासा कार्यक्रम सीएसआईआर की एक बड़ी पहल है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यालय स्तर में दी जाने वाली शिक्षा में विज्ञान के प्रति अभिरूचि विकसित करना है।

- इस कार्यक्रम द्वारा विद्यालय स्तर के छात्र–छात्राओं और उनके शिक्षकों के बीच वैज्ञानिक संस्कृति तथा वैज्ञानिक स्वभाव का विकास करना है।
- यह कार्यक्रम छात्र–छात्राओं और शिक्षकों को सीएसआईआर प्रयोगशालाओं में जाकर सूक्ष्म–विज्ञान परियोजनाओं में भाग लेकर विज्ञान में सिखाई गई सैद्धांतिक अवधारणाओं को व्यवहारिक रूप से जीवन में ग्रहण करने व लागू करने में उपयोगी है।
- विद्यालय स्तर पर छात्र–छात्राओं को विज्ञान के प्रति रूझान को बढ़ावा और भविष्य के लिए नये वैज्ञानिकों को दिशा देना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है।
- विद्यालय स्तर पर तथा बाल्यावस्था में कक्षाओं में दी जाने वाली शिक्षा के द्वारा विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करना है।

जिज्ञासा कार्यक्रम निम्नलिखित रूपों से संचालित किया जाता है :

- छात्र आवासीय कार्यक्रम ।
- वैज्ञानिक शिक्षक के रूप में और शिक्षक वैज्ञानिक के रूप में कार्यक्रम।
- प्रयोगशाला में विशिष्ट गतिविधियाँ/ऑनसाइट प्रयोग।
- विद्यालयों/आउटरीच कार्यक्रमों के लिये वैज्ञानिकों का भ्रमण।
- विज्ञान और गणित क्लब।

- विद्यालयों में लोकप्रिय व्याख्यान श्रृंखला / प्रदर्शन कार्यक्रम।
- छात्र शिक्षुता कार्यक्रम।
- विज्ञान प्रदर्शनी।
- शिक्षक कार्यशालाएं इत्यादि।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सीएसआईआर द्वारा किये गये प्रयासों से जुलाई 2017 से मार्च 2020 तक 2,93,659 छात्र–छात्राओं 21095 अध्यापक एवं 5000 से अधिक वैज्ञानिक और शोधार्थी लाभान्वित हो चुके है।

जिज्ञासा कार्यक्रम के अन्तर्गत वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ की भूमिका

सीएसआईआर–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान प्रारम्भ से ही देश की सामाजिक व आर्थिक प्रगति में अपनी अहम भूमिका निभाता आ रहा है, जैसे वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार–प्रचार करना, किसानों को वैज्ञानिक तरीके से पुष्पों की खेती करना एवं उनके व्यावसायीकरण के विषय में प्रशिक्षण प्रदान करना। पौधों की पौधशाला तैयार करना, बोन्साई तकनीकी आदि। संस्थान अपनी विकसित तकनीकी तथा विज्ञान का प्रसार–प्रचार, संस्थान द्वारा आयोजित की जाने वाली पुष्प प्रदर्शनी एवं राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित की जाने वाली विज्ञान प्रदर्शनियों, विज्ञान मेलों आदि के माध्यम से आम जनता एवं उद्यमियों तक पहुँचा रहा है।

संस्थान में पूर्व से ही विभिन्न विद्यालयों के छात्र–छात्राओं को वनस्पति विज्ञान में अभिरूचि उत्पन्न विकसित हेतु भ्रमण कराया जाता है तथा विज्ञान बाल मेला, विज्ञान दिवस, पर्यावरण दिवस व सीएसआईआर तथा एनबीआरआई स्थापना दिवस में विद्यालयों को आमंत्रित किया जाता है। छात्रों को विश्व के प्रख्यात वैज्ञानिकों के सम्बोधन को भी सुनने का अवसर प्रदान कराया जाता है।

चित्र संख्या–1 : संस्थान के स्वागत द्वार पर ग्रुप फोटोग्राफ

चित्र संख्या–2 : जिज्ञासा कार्यक्रम में बच्चों के साथ ग्रुप फोटोग्राफ

जिज्ञासा कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थान द्वारा सत्र 2017–18, 2018–19 एवं सत्र 2019–20 के दौरान कुल 12285 छात्र–छात्राओं तथा 494 अध्यापकों को विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी तथा प्रशिक्षण प्रदान किया गया ।

टेबलः 1 सीएसआईआर–एनबीआरआई में 2017–18 से 2019–20 तक विभिन्न विद्यालय व अध्यापक की भागीदारी

सत्र	केन्द्रीय विद्यालय	नवोदय विद्यालय	सरकारी स्कूल	अन्य स्कूल	कुल छात्र–छात्राएं	अध्यापक
2017–18	234	0	0	2619	2853	15
2018–19	600	0	525	3311	4436	182
2019–20	3111	320	317	1248	4996	297
कुल	**3945**	**320**	**842**	**7178**	**12285**	**494**

केन्द्रीय विद्यालय के कुल 3945 छात्र–छात्राओं को संस्थान ने अपने कार्यक्रम में सम्मिलित किया, इसके अतिरिक्त अन्य स्कूल के कुल 7338 छात्र–छात्राएं जिसमें सत्र 2018–2019 में सबसे ज्यादा 3311 छात्र–छात्राओं नें भाग लिया। नवोदय विद्यालय व अन्य सरकारी स्कूल के क्रमशः 320 तथा 842 छात्र–छात्राओं की विज्ञान प्रशिक्षण तथा विज्ञान कार्यशाला में भागीदारी रही।

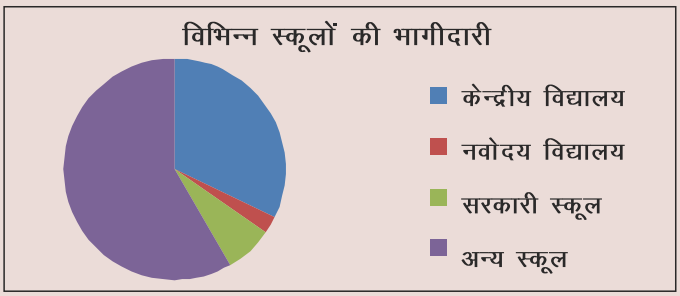

वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान विज्ञान प्रशिक्षण तथा विज्ञान कार्यशाला के अलावा बच्चों को दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली विज्ञान, औषधीय पौंधों का महत्व और विज्ञान से सम्बन्धित रोचक संवाद व व्याख्यान

चित्र संख्या–3 : छात्र–छात्राओं का विभिन्न प्रयोगशालाओं में भ्रमण

भी प्रस्तुत किये गये इस दौरान छात्र–छात्राओं में विज्ञान के प्रति उत्सुक जिज्ञासा को आपसी संवाद द्वारा स्पष्ट किया गया। विश्व मृदा दिवस, विश्व ओजोन दिवस के अवसर पर एवं उच्च प्रयोगशाला तकनीकी पर छात्र–छात्राओं हेतु वर्कशाप का भी आयोजन किया गया।

छात्र–छात्राओं एवं शिक्षकों को संस्थान की प्रमुख सुविधाओं एवं प्रयोगशालाओं क्रमशः पादपालय, वनस्पति गार्डन (संरक्षणशाला, कैक्टस हाउस, साइकेड, हाउस फर्न हाउस, बोनसाई हाउस) तथा संस्थान के अभिदर्शन में भी भ्रमण कराया गया। संस्थान की विभिन्न अनुसंधान प्रयोगशालाओं का भ्रमण करके सुविधाओं का लाभ छात्रों ने प्राप्त किया एवं प्रयोगशालाओं में उपयोग किये जाने वाले उपकरणों (सूक्ष्मदर्शी, आटो क्लेव, पीएच मीटर, अपकेन्द्रित्र, पानी का आसवन विधि) तथा ऊतक संवर्धन तकनीकी से नये पौधे बनाने की प्रक्रिया के बारे में जानकारी प्रदान की गई, जो कि उनके लिये उत्प्रेरक थी।

सीएसआईआर की विभिन्न प्रयोगशालाओं में जिज्ञासा कार्यक्रम की सफलता को देखते हुए तथा केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, सरकारी विद्यालय और अन्य विद्यालयों के छात्र–छात्राओं का जिज्ञासा कार्यक्रम के प्रति आकर्षण तथा बढ़ती अभिरूचि को ध्यान में रखते हुए, इस कार्यक्रम को आगामी 5 वर्ष (2025) तक विस्तारित किया जाना प्रस्तावित है।

संख्यावाची शब्दों का मानक रूप

के. के. सक्सेना
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

इस तथ्य से हम सभी परिचित है कि हिन्दी भारतीय संघ तथा कई प्रदेशों की राजभाषा है। भारत के संविधान के भाग–17 के अनुच्छेद–343 में वर्णित है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रायोजनों (सरकारी काम–काज) के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। यहाँ पर भी उल्लेख करना आवश्यक है कि इसी अनुच्छेद–343 में आगे यह भी लिखा है कि राष्ट्रपति संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप (0,1,2,3,4,5,6,7,8,9) के अतिरिक्त देवनागरी रूप (०,१,२,३,४,५,६,७,८,९) का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा। उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के बाद संसद विधि द्वारा अंकों के देवनागरी रूप का ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएँ।

प्रायः देखा गया कि शासकीय प्रयोजनों जैसे– चेक जारी करते समय, बिलों में, वित्त एवम् लेखा संबंधी कार्यों इत्यादि में धनराशि को अंको के साथ–साथ शब्दों में भी लिखने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु हम पाते हैं कि संख्यावाची शब्दों की वर्तनी में एकरूपता नहीं रहती। कहनें का अर्थ है कि इन शब्दों के उच्चारण तथा लेखन में प्रायः एकरूपता लाने के लिए संख्यावाची शब्दों का मानक रूप निर्धारित करना अति आवश्यक है। इसको ध्यान में रखकर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने 5–6 फरवरी, 1980 को शीर्षस्थ विद्वानों तथा भाषा विज्ञानियों की बैठक में गहन विचार–विमर्श के उपरान्त एक से सौ तक के संख्यावाचक शब्दों का जो मानक रूप स्वीकृत कर निर्धारित किया, वह इस प्रकार है :–

1 एक	21 इक्कीस	41 इकतालिस	61 इकसठ	81 इक्यासी
2 दो	22 बाईस	42 बयालिस	62 बासठ	82 बयासी
3 तीन	23 तेईस	43 तैंतालिस	63 तिरसठ	83 तिरासी
4 चार	24 चौबीस	44 चवालिस	64 चौंसठ	84 चौरासी
5 पांच	25 पच्चीस	45 पैंतालिस	65 पैंसठ	85 पचासी
6 छह	26 छब्बीस	46 छियालिस	66 छियासठ	86 छियासी
7 सात	27 सत्ताईस	47 सैंतालिस	67 सड़सठ	87 सतासी
8 आठ	28 अट्ठाईस	48 अड़तालिस	68 अड़सठ	88 अठासी
9 नौ	29 उनतिस	49 उनचास	69 उनहत्तर	89 नवासी
10 दस	30 तीस	50 पचास	70 सत्तर	90 नब्बे
11 ग्यारह	31 इकतिस	51 इक्यावन	71 इकत्तहर	91 इक्यानवे
12 बारह	32 बत्तिस	52 बावन	72 बहत्तर	92 बानवे
13 तेरह	33 तैंतिस	53 तिरपन	73 तिहत्तर	93 तिरानवे
14 चौदह	34 चौतिस	54 चौवन	74 चौहत्तर	94 चौरानवे
15 पन्द्रह	35 पैतिस	55 पचपन	75 पचहत्तर	95 पच्चानवे
16 सोलह	36 छत्तिस	56 छप्पन	76 छिहत्तर	96 छियानवे
17 सत्रह	37 सैतिस	57 सत्तावन	77 सतहत्तर	97 सत्तानवे
18 अट्ठारह	38 अड़तिस	58 अठ्ठावन	78 अठहत्तर	98 अठानवे
19 उन्नीस	39 उनतालिस	59 उनसठ	79 उन्यासी	99 निन्यानवे
20 बीस	40 चालिस	60 साठ	80 अस्सी	100 सौ

प्रकृति से जुड़े रहने वाले बच्चे अधिक खुश व प्रसन्न रहते हैं

आलोक कुमार श्रीवास्तव
इंदिरा नगर, लखनऊ

प्रकृति बच्चों के लिए दवा की तरह काम करती हैं। प्रकृति के नजदीक रहने वाले छोटे बच्चे सदैव निरोग रहते हैं। अंतर्राष्ट्रीय शोध से यह ज्ञात हुआ है कि प्रकृति से जुडे रहने वाले छोटे बच्चे बहुत खुश रहते हैं तथा इसके महत्व को समझते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रकृति से जुडे रहने वाले छोटे बच्चों के व्यवहार पर इसका बहुत वृहद रूप से असर पड़ता है जिसकी वजह से वे बहुत खुश रहते हैं यह शोध 9 से 12 साल की उम्र के 297 बच्चों पर किया गया। ''मानव प्राकृतिक दुनिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।'' तथा ''मैं खाली बोतल रिसाइकिल करने के लिए अलग करूंगा'' जैसे लाइनों से जांचा गया कि वे प्रकृति के कितना नजदीक हैं तथा क्या सोचते हैं। प्रकृति से जुड़ाव खत्म होने को तकनीकी भाषा में 'नेचर अफिसिट डिसआर्डर' बोलते हैं जो प्रकृति अथवा पृथ्वी को खत्म करने के बराबर है।

छोटे बच्चों का जुड़ाव जब तक प्रकृति से रहेगा तभी उनके भीतर इसे सुरखित रखने की भावना विकसित होगी।

भविष्य की नई पीढ़ी के पास संरक्षण की जिम्मेदारी–

पृथ्वी को घने जंगलों की कटाई, जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) तथा बृहद पैमाने पर महत्वपूर्ण प्रजातियों के विलुप्त होने से भविष्य की पीढ़ी के लिए खतरा बहुत बढ़ रहा है। हम सब को इस बात पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए कि कैसे छोटे बच्चों को पर्यावरण के नजदीक लाया जाय जिससे वे प्रसन्न भी रहें, इसके महत्व को इसमें तथा इसे बचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाएं।

छोटे बच्चों का प्रकृति के बीच रहना बेहद जरूरी–

प्रकृति के नजदीक रहने वाले छोटे बच्चों के मानसिक विकास पर अत्याधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों तथा अभिभावकों को छोटे बच्चों के प्राकृतिक सौंदर्य के बची रहने के लिए सदैव प्रेरित करते रहना होगा।

इस अंतर्राष्ट्रीय शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रकृति के नजदीक रहने वाले छोटे बच्चे प्रसन्न रहेंगे तो उनका स्वभाव तथा उनका व्यवहार भी पहले से उत्तम होगा।

अब आई स्कैन से ऑटिज्म की पहचान संभव है–

ऑटिज्म पीड़ितों की आँखों के इलेक्ट्रिक संकेत बहुत अलग तरह के होते हैं–

अंतर्राष्ट्रीय शोध के बाद हमारी आंखों के लिए एक ऐसा स्कैन विकसित किया गया है जो छोटे बच्चों के प्रारम्भ के दो–तीन वर्षों में ही उनमें आटिज्म की पहचान करेगा। इससे इस खतरनाक बीमारी के बारे में पहले से ही पता चल जायेगा तथा छोटे–बच्चों का और बेहतर इलाज किया जा सकेगा।

इलेक्ट्रिकल संकेतों से आटिज्म गंभीर रोग का पता चल सकेगा–

अंतर्राष्ट्रीय शोध के अनुसार आँखों का स्कैन करने के लिए हाथ से पकड़ने वाले उपकरण का इस्तेमाल किया जायेगा। यह उपकरण आंखों की रेटिना से निकलने वाले इलेक्ट्रिकल संकेतों की मदद से ऑटिज्म रोग से पीड़ित छोटे बच्चों की पहचान में मददगार साबित होगा। आटिज्म स्पेक्ट्रम से पीड़ित छोटे बच्चों की आंखों में अलग तरह के इलेक्ट्रिकल संकेत दिखाई देते हैं।

इस अंतर्राष्ट्रीय शोध में 180 व्यक्तियों की आँखों पर स्कैन का परीक्षण किया गया। इन व्यक्तियों की उम्र 5 से 21 वर्ष तक थी। ऑटिज्म से संबंधित संभावित बायोमार्कर जिसका इस स्कैन में इस्तेमाल किया जाता है और भी कई बीमारियों की पहचान करने में मदद कर सकता है। इसमें अटेंशन डिफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसआर्डर मौजूद है।

रेटिना दिमाग से सीधा जुड़ता है–

अंतर्राष्ट्रीय शोध के अनुसार रेटिना दिमाग का विस्तार होता है। यह न्यूरल ऊतकों से बना होता है तथा आप्टिक नसों के द्वारा दिमाग से जुड़ा होता है। यह विशेष परीक्षण छोटे बच्चों में अत्यंत प्रभावशाली साबित होगा।

आप खरीददारी बहुत सावधानी से करें, कूरियर से भी आप तक पहुँच सकता है जानलेवा कोरोना विषाणु–

जानलेवा कोरोना वायरस से बचने के लिए आपको अब और अधिक सावधानी बरतनी पड़ेगी। आप सभी लोगों से विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ने यह अपील की है कि आप लोग ज्यादा खरीदारी करने से बचें क्योंकि कूरियर के द्वारा भी जानलेवा कोरोना विषाणु आपके कार्यालय या फ्लैट तक बड़ी आसानी से पहुंच सकता है।

स्टैनलेस स्टील तथा प्लास्टिक में तीन से अधिक दिन तक जीवित रहता है कोरोना–

मोंटाना स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ वायरोलॉजी के एक अंतर्राष्ट्रीय उच्चकोटि के शोध से यह ज्ञात हुआ है कि जानलेवा कोरोना विषाणु स्टेनलेस स्टील तथा प्लास्टिक पर तीन दिन से अधिक समय तक जीवित रह सकने में सक्षम है।

इस शोध के अनुसार तांबे के बर्तनों इत्यादि पर जानलेवा कोरोना 4 या 4.5 घंटे से अधिक जीवित नहीं रह सकता है, लेकिन प्लास्टिक तथा स्टील की सतह पर यह वायरस तीन दिन से अधिक समय तक एक्टिव (जीवित) रह सकने में सक्षम है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि कूरियर से आने वाले पैकेट या सामान को लेना बंद कर दिया जाए या 9–10 दिन बाद खोला जाए तो इस वायरस को रोकने में सहायता मिल सकती

है। ऑनलाइन शापिंग से बहुत से पुरुष एवं स्त्रियां अनेक प्रकार के पैकेट मंगाते हैं, जिसमें बड़े–बड़े या स्मार्ट फोन, कपड़े इत्यादि होते हैं। ऐसे कूरियर से ये सामान जब आपके कार्यालय या अपार्टमेंट में पहुँचेंगे तब ये अपने साथ जानलेवा कोरोना विषाणु भी आराम से ला सकते हैं।

ग्रिफ्सबॉल्ड युनिवर्सिटी हॉस्पिटल के डॉक्टरों के अनुसार जानलेवा कोरोना विषाणु चार से पांच दिन ही जीवित रह सकता हे।

किन्तु सर्दियों में तापमान कम होने से कोरोना विषाणु के जीवित रहने की समय सीमा और अधिक हो सकती है। इससे पहले जर्मनी में हुए अंतर्राष्ट्रीय शोध से यह पता चला था कि कम टैम्परेचर (कक्ष के तापमान) पर कोरोना विषाणु नौ दिन तक जीवित रह सकता है।

अपने आसपास विशेष सफाई का ध्यान रखें–

हाथों को नियमित साफ करने से कोरोना वायरस से बचाव संभव है। आप अपने बैठने की जगह को भी साफ रखें। आप अपने हाथों को अच्छी तरह से धोयें। तथा अपने चेहरे को बार–बार छूने से बचें।

कम उम्र में बीमार रहने से मस्तिष्क को क्षति पहुँच सकती है–

सोचने की क्षमता तथा याद्दाश्त पर पड़ता है खराब असर–

लगभग 20 साल की उम्र में अधिक बीमार रहने से दिमाग बहुत कमजोर हो जाता है। अर्न्तराष्ट्रीय शोध में यह खुलासा हुआ है कि 20 वर्ष की उम्र में अधिक बीमारियां होने से याद्दाश्त सोचने की क्षमता तथ दिमाग के पूर्ण रूप से खून का प्रवाह करने की क्षमता बहुत कम हो जाती है।

युवावस्था में उच्च रक्तचाप, धूम्रपान, अथवा अधिक वजन जैसी स्वास्थ्य संबंधी गम्भीर दिक्कतें होने से बुढ़ापे में कमजोर मस्तिष्क होने की अधिक संभावना होती है। अनेक वर्षों से शोध के पश्चात यह निष्कर्ष निकला है कि स्त्रियों एवं पुरुषों को 20 वर्ष की उम्र में भी अपने स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखना चाहिए।

रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) से दिमाग की वाहिकाओं को होता है गंभीर नुकसान–

शोध से यह ज्ञात हुआ है कि उच्च रक्त चाप तथा उच्च रक्त शर्करा (शुगर) के स्तर जैसे अत्यंत जोखिम कारक हमारे दिमाग को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं तथा इससे बूढ़े व्यक्तियों में सोचने की क्षमता बहुत ही कम हो जाती है। लेकिन शोध में यह भी पता चला है कि ये जोखिम वाले कारक दशकों पहले भी दिमाग के विकास को अत्यंत नुकसान पहुंचाते हैं।

लगभग 32 साल तक चले इस शोध में दिमाग तथा दिल के स्वास्थ्य को पाँच जोखिम कारकों से पहुँच रहे नुकसान का विश्लेषण किया गया। इस अंतर्राष्ट्रीय शोध में यह पाया गया कि जिन व्यक्तियों के दिमाग तथा दिल का स्वास्थ्य कम उम्र में बेहतर था उन्होंने लगभग 32 साल बाद भी याद्दाश्त संबंधी परीक्षण में अच्छा प्रदर्शन किया।

आपके दिमाग को अच्छा रखता है बेहतर स्वास्थ्य–

अंतर्राष्ट्रीय शोध में यह पाया गया कि जिन व्यक्तियों के दिमाग तथा दिल का स्वास्थ्य वृहद शोध के प्रारम्भ में तथा अगले सात सालों तक ठीक था उनमें सेरेब्रल ऑटो रेगुलेशन बेहतर था। सेरेब्रल आटोरेगुलेशन दिमाग में रक्त प्रवाह करने की हमारे शरीर की क्षमता को कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि रक्तचाप में होने वाले बदलावों के पश्चात भी ऐसे व्यक्त्यिों के दिमाग में रक्त प्रवाह सामान्य रहता है। लेकिन इस निष्कर्ष पर और अधिक अंतर्राष्ट्रीय शोध करने की आवश्यकता है कि उम्र बढ़ने के दौरान वाहिकाओं को पहुँचाने वाले गंभीर नुकसान से हमारे दिमाग कैसे प्रभावित होता है।

हेलमेट तथा सीट बेल्ट से बच सकती हैं 55 फीसदी जानें–

भारत में होने वाले सड़क दुर्घटनाओं में 95 प्रतिशत व्यक्तियों को ब्रेन इन्जरी होती है तथा इसमें से 55 प्रतिशत व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। हेलमेट तथा सीट बेल्ट का ठीक से इस्तेमाल करने से इन असमय मौतों को काफी हद तक रोका जा सकता है। हेलमेट तथा सीट बेल्ट हमारे सिर को बचाकर जिंदगी लौटाते हैं। भारत में प्रति वर्ष सड़क दुर्घटनाओं में लगभग 5 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है।

इसके साथ ही मानकों का पूरा ध्यान रखते हुए अच्छी सड़कें बननी चाहिए। हर सड़क तथा हाईवे पर सुरक्षा के सभी मानकों का पूरा प्रबंध किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही सभी राजमार्गों पर स्मार्ट डस्टबिन लगाई जानी चाहिए जो सेंसरयुक्त होंगी क्योंकि साधारण कूड़ेदान का कूड़ा डस्टबिन भरने के बाद, राजमार्ग पर बिखरने लगता है, जिससे जानवर इकट्ठा हो जाते हैं। इससे तेज गति के वाहनों की आपस में टक्कर होने से अनेक लोग या तो गंभीर रूप से चोटिल हो जाते हैं तथा सैकड़ों व्यक्ति इन हादसों में मारे जाते हैं।

इन स्मार्ट डस्टबिन में एक विशेष चिप लगी होगी हो सेंसर का काम करेगी। इन स्मार्ट डस्टबिन से कूड़े के पूरा भरते ही कमांड एवं कंट्रोल रूम में विशेष संदेश पहुँचना प्रारम्भ हो जायेगा। कंट्रोल रूम से पास में स्थित रिफ्यूज कलेक्अर (कूड़ा उठाने की विशेष गाड़ी) को संदेश भेजा जायेगा। गाड़ी तत्काल मौके पर पहुँचेगी तथा कूड़े को डस्टबिन से खाली करेगी।

इसके साथ ही गंभीर सड़क दुर्घटनाओं को रोकने के लिये हमें गाड़ी चलाते समय मोबाइल पर बात बिलकुल नहीं करनी चाहिये तथा हेड फोन, ईयर फोन तथा ब्लूटूथ पर भी बात नहीं करनी चाहिए।

भयानक सड़क दुर्घटनाओं को कम करने के लिए हमें अपने वाहनों को शहर में 50 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से तथा हाईवे पर 60 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलाना चाहिए।

अनेक गंभीर सड़क दुर्घटनाएं झपकी आने से हो जाती हैं। अतः गाड़ी चलाते समय चेहरे पर एक या दो घंटे के बाद पानी के छींटे मारते रहना चाहिए।

वाहन को दुर्घटना से बचाने के लिए कभी भी ओवरलोडिंग न करें। ओवरलोडिंग करने से वाहन नियंत्रण के बाहर हो जाता है तथा गंभीर दुर्घटना होने की संभावना अत्यंत प्रबल हो जाती है।

वाहन की सभी लाइट तथा बल्ब अच्छी दशा में होना चाहिए अन्यथा रात्रि में हेड लाइट खराब होने से भी कई वाहनों में टक्कर हो जाती है जिससे अनेक यात्री गंभीर रूप से चोटिल हो जाते हैं या मौत के मुंह में समा जाते हैं।

वाहन चलाते समय एल्कोहल व सिगरेट का इस्तेमाल न करें क्योंकि इससे वाहन पर नियंत्रण खोने की संभावना प्रबल हो जाती है।

विश्व में जानलेवा वायु प्रदूषण की स्थिति 2019 में अत्यन्त गंभीर रही–

खतरनाक कोविड–19 महामारी के बीच तेजी से बढ़ रहे जानलेवा वायु प्रदूषण ने चिंता बहुत ही बढ़ा दी है। ऐसे समय में प्रदूषण संबंधी स्टेट आफ ग्लोबल ईयर 2020 की डिटेल रिपोर्ट भी बहुत अधिक चिंता बढ़ाने वाली है। इस विस्तृत रिपोर्ट के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में खतरनाक वायु प्रदूषण से 2019 में 65 लाख से अधिक व्यक्ति काल कलवित हो गये।

सम्पूर्ण विश्व में मौत के चार मुख्य कारण होते हैं। मौत की सबसे बड़ी वजह उच्च रक्त चाप (हाई ब्लड प्रेशर) होता है, दूसरी मुख्य वजह तंबाकू का सेवन है। तीसरी मुख्य वजह होती है खराब भोजन तथा चौथी प्रमुख वजह होती है वायु प्रदूषण।

केवल भारत में 2019 में घरेलू तथा बाहरी वायु प्रदूषण से दिल का दौरा, स्ट्रोक, फेफड़ों के कैंसर, डायबिटीज, नवजात छोटे बच्चों तथा फेफड़ों के पुराने रोगों से अनेक व्यक्तियों की जाने चली गईं। स्टेट ऑफ ग्लोबल ईयर 2020 रिपोर्ट के अनुसार, स्वास्थ्य पर अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ने के बाद भी जानलेवा वायु प्रदूषण को कम करने के लिए सम्पूर्ण विश्व में बहुत कम प्रयास किये गये।

बांग्लादेश, भारत नेपाल तथा पाकिस्तान सहित दक्षिण एशियाई देश 2019 में पी एम 2.5 के उच्चतम स्तर के मामले में शीर्ष 10 पर रहे हैं।

'स्टेट आफ ग्लोबल ईयर 2020 रिपोर्ट' में बताया गया है कि भारत में केन्द्रीय कैबिनेट पर्यावरण मंत्री एवं विज्ञान मंत्री माननीय डॉ0 हर्षवर्धन जी के नेतृत्व में नेशनल क्लीन ईयर प्रोग्राम की शुरुआत की गयी।

भारत वर्ष में वायु प्रदूषण को कम करने की योजना के अंतर्गत कैबिनेट पर्यावरण एवं विज्ञान मंत्री माननीय डॉ0 हर्षवर्धन जी ने वाहनों के लिये भारत स्टेज 6 की शुरुआत की।

उत्तर प्रदेश में कैबिनेट पर्यावरण एवं वन मंत्री माननीय डा0 दारा सिंह चौहान एवं मुख्य सचिव पर्यावरण डॉ0 देवेश चतुर्वेदी मुख्य सचिव कृषि के नेतृत्व में वायु प्रदूषण को कम करने हेतु अनेक गंभीर प्रयास किये गये जो सफल रहे। एवं हरियाणा इत्यादि के मुकाबले उत्तर प्रदेश में पराली से भी कम हानि हुई।

चीन में बढ़ते प्रदूषण पर इस रिपोर्ट में बताया गया कि वहां सन् 2013 तथा 2016 में खतरनाक वायु प्रदूषण को कम करने के लिए पंचवर्षीय कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। 2010 तथा 2019 में इसके साथ ही एक अन्य प्रोग्राम चलाया गया था जिससे चीन में वायु प्रदूषण 27 प्रतिशत तक कम हो गया। इसके साथ ही चीन में कोयले के इस्तेमाल की जगह प्राकृतिक गैस का प्रयोग शुरू कर दिया गया।

ईर्ष्या या घृणा को प्रेम से ही
खत्म किया जा सकता है

– भगवान बुद्ध

कोरोना से डरो न

आलोक मिश्र
केन्द्रीय विद्यालय, अलीगंज

रहीमदास
रहिमन घर से जब चलो, रखिए मास्क लगाय,
ना जाने किस वेश में मिले कोरोना आय।

कबीरदास
कबीर काढ़ा पीजिए, काली मिरिच मिलाय,
रात दूध–हल्दी पियो, सुबह पीजिए चाय।

तुलसीदास
छोटा सेनीटाइज़र, तुलसी रखिए जेब,
न काहू से मागिहो, न काहू को देब।

सूरदास
सूरदास घर में रह्यो, ये है सबसे बेस्ट,
जर, जुकाम, सर्दी लगे, तुरंत करालो टेस्ट।

आलोक दास (मिश्र)
कृपया हाथ न मिलाइए, करिए दूर से नमस्ते,
घर पर ही बैठकर, बनाइए पूड़ी–सब्जी और खस्ते।

बिस्तर पर लेटे रहो, सुबह–शाम दिन–रात,
जब करनी हो पढ़ाई, ले लो ऑनलाइन क्लास।

रहिमन वैक्सीन ढूँढ़िए
बिन वैक्सीन सब सून,

वैक्सीन बिना ही बीत गए
अप्रैल, मई और जून।

कबीर वैक्सीन ढूढ़ लिया
धीरज धरो तनिक तुम।

ट्रायल फायनल चल रहा,
वैक्सीन कमिंग सून।

खेत और खाने की थाली

शशांक कुमार मिश्रा एवं पुनीत सिंह चौहान
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001

भारत खेती–किसानी पर निर्भर देश है। हमारे देश की प्राथमिकता भी खेती और किसान ही होना चाहिए जिससे किसान समृद्ध भी हो सके प्राकृतिक तरीके से अपने आस–पास की बिखरी हुई वस्तुओं से खेती कर सके। इसका मतलब वह जैविक खेती करे। सबसे पहले, किसान को चाहिए कि वह अपने परिवार के लिए उपयुक्त फसलें पैदा करने के लिये खेती करे जिससे वो रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत जरूरतों को पूरा कर सके। यह कदम हर एक किसान को उठाना चाहिए।

किसान खेती दो तरह से करते हैं एक परम्परागत खेती, दूसरी गैर–परम्परागत खेती। किसान को चाहिए की अपने खेत के एक भाग में गैर परम्परागत खेती करे, जिसमे अनाज, दाल, तिलहनी फसलें, मसालों के साथ–साथ दूसरे भाग में कुछ औषधीय और सौंदर्य प्रसाधन में उपयोगी पौधों की खेती करे। इससे ये होगा की किसान को सामान्य घर में प्रयोग होने वाले वस्तुओं के लिए बाजार पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। बाकी के बचे खेत में उपभोक्ताओं के मांग के अनुसार खेती करे या फसलें पैदा करे। कोशिश करे कि सीधे ग्राहक तक अपने उत्पाद को पहुँचाए। देखिये इसी को कहते हैं खेत से सीधे उपभोक्ताओं के खाने की थाली तक पहुँचना।

किसानों और ग्राहकों को सीधे जोड़ने का ये प्रयास आगे चलकर बहुत महत्वपूर्ण प्रयास होगा। इससे पहले तो किसान की आमदनी बढ़ेगी और दूसरी तरफ ग्राहकों को शुद्ध खाद्यान्न प्राप्त होगा। एक और फायदा ग्राहकों को भी मिलेगा कि उनके स्वास्थ्य में सुधार रहेगा जिससे दवाइयों पर उनकी निर्भरता कम हो जाएगी।

विदेशों में इस तरह के प्रयास बहुत चलन में हैं। इसे कम्युनिटी सपोर्टेड एग्रीकल्चर कहते हैं। इसमें ग्राहक (उपभोक्ता) किसानों को अग्रिम राशि प्रदान करता है और किसान अग्रिम राशि का प्रयोग करके जैविक खाद्यान्न पैदा कर रहा है। इससे ग्राहक आसानी से जैविक उत्पाद प्राप्त कर लेते हैं।

इसमें एक अहम् कदम हमारे शहरी उपभोक्ताओं को भी उठाना पड़ेगा। शहरी उपभोक्ता किसानों से अपनी मांग के अनुसार जैविक खेती के माध्यम से फसलें उगाने का आग्रह करे, और किसानों को अग्रिम राशि भी मुहैया करायें।

एक आँकड़ा जो सार्वभौमिक है किसी भी उत्पाद का 80% बिचौलिए, बाजार, परिवहन और विज्ञापन की सहायता से खा जाते हैं और 20% में किसान क्या खाये? क्या लगाए? वाली बात से होकर गुजरने लगता है। ऐसी दशा में किसान अगर खेती को राम राम करके शहर में मजदूरी के लिए खड़ा है तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, मरता क्या न करता?

अगर हम अपनी सोच बदलें तो यह हमारे देश में और संभव हो सकता है। इसमें हम किसानों के खेत से चल कर स्वस्थ रूप से उपभोक्ताओं की थाली तक पहुँचाया जा सकता है। इसमें किसान और ग्राहक, उपभोक्ता दोनों को लाभ होगा।

खुद वो बदलाव बनिए
जो दुनिया में आप देखना चाहते हैं
– भगवान बुद्ध

तीन महत्वपूर्ण कविताएं

सुरेश उजाला
108, तकरोही, पं. दीनदयालपुरम् मार्ग, इंदिरा नगर, लखनऊ–226006

मर्दानगी.....0
छोड़ रही है–साथ
घट रहा है–
मनुष्योचित–बल–
धीरे–धीरे
प्रतिपल
हो रहा है–ह्रास–
पौरूषता का
हावी है–निष्क्रियता–
मन–मस्तिष्क पर
छाया है
किन्नरपन
शिथिल हो गये हैं–यौनांग
दस्तक दे रही है–
नपुंसकता
जीत न हार–
विवश–लाचार–
हाथ बांधे खड़ा है
पुरूषार्थ–
वृद्धावस्था के द्वार

बुढ़ापा 0
बुढ़ापा–रोग है–
स्वयं अपने आप में
भाव–वाचक संज्ञा है–
बुढ़ापा–
जिसमें बोध होता है–
प्राणी के–गुण–भाव–
स्वभाव का

जिसमें–
प्रयोग होता है–प्राय–
'पन'–'त्व'–ता'–आदि–
शब्दों का
स्वाभाविक
प्राकृतिक घटना है–
बुढ़ापा
जिसका अर्थ है–
बढ़ा हुआ–पका हुआ–
परिपक्व
अस्पष्ट है–
बुढ़ापे की हद
दस्तक दे रही है–
जीवन की लड़खड़ाहट
घर और बाहर की–
दुत्कार है–बुढ़ापा
घटी हुई–
प्रतिक्रिया है–जीवन की–
बुढ़ापा
उल्टे दिनों की–
गिनती है–
घड़ी है–बुढ़ापा
बहकी–बहकी बातों का
समय है–बुढ़ापा
असाध्य रोगों का–
जमावड़ा है–
चुनौती है–
अग्नि परीक्षा है–
धीरे–धीरे आने वाली–
विकट समस्या है–
बुढ़ापा
कुशल–अकुशल कर्मों का–
उपसंहार है–बुढ़ापा
कुल मिलाकर
जीवन की अंत की–
शुरूआत है बुढ़ापा

मृत्यु 0
महत्वपूर्ण–
कार्यो की समाप्ति है–
मृत्यु
जीवन का अंतिम–
सोपान है मृत्यु–
प्रत्येक प्राणी की–
अनिवार्य है–मृत्यु
कुल मिलाकर–
भौतिक–
और
मानसिक तरंगों का–
विछोह है–मृत्यु
मृत्यु ही करती है–
परिभाषित–
जीवन की परिभाषा
जीवन का–
महापरिनिर्वाण है–मृत्यु
सांसारिक चक्र है–
नियम है–मृत्यु–
तमाम कष्टों से–
निजात है–मृत्यु–
जो देती है–मौका–
नई पीढ़ी को–
जीवन जीने का
दुनिया में–
आज भी अपराध है–
स्वैच्छिक मृत्यु–
जीते जी

आखिर क्या है उसकी कहानी?

स्नेहा पाण्डेय
केन्द्रीय विद्यालय, अलीगंज

क्या किसी ने है जानी, कैसी होती उनकी जिंदगानी
कभी–कभी तो दिन बीत जाता है
वह निराशापूर्ण घर को आता है
अपने बच्चे की ओर देखता है, और सोचता है
कि कैसे कटेगी ये रात बिना पेट में गए खुराक
और कैसे बीतेगी उसकी ये जिंदगानी
वह कैसे सुनाए अपनी ये कहानी
उसकी यह जिंदगानी
अगली सुबह वह बच्चे को साथ ले जाता है
और उसके साथ सख्ती से पेश आता है
उसे अपना काम सिखाता है
दिल पर पत्थर रखकर कहता है
कि यही है तुम्हारी जिंदगानी
अब तुम्हें भी ये जिम्मेदारी है अपनानी
पाठशाला जाने की उम्र में
वो बच्चा सड़क पर है आता
और कटोरे को हाथ में लिए अपना फर्ज निभाता
मजबूरन ही सही, उसी उम्र में अपने पैसों की रोटी वह खाता
क्या करे वो बेचारा, किसे अपनी दर्द भरी कहानी सुनाता
कोई न समझ पाता उसकी यह कहानी
क्योंकि शायद यही है उसकी जिंदगानी
कभी–कभी तो वह लोगों के फेके हुए जूठा खाता
और बस रोटी के लिए पैर पकड़ गिड़गिड़ाता
क्या कोई समझ सकता है उस गरीब की कहानी
अगर समझ पाओ तो होगी बहुत मेहरबानी
क्योंकि आसान नहीं है उसकी यह कहानी
शायद ऐसी ही है उसकी जिंदगानी
शायद उस रात भी वह रोया होगा
जिस दिन पिता का प्यार उसे खोया होगा
उस नादान को तो कुछ भी नहीं था पता
आखिर उसे क्यों मिली ऐसी सज़ा?
उसकी आंखों से बहता रहा पानी
फिर भी कोई समझा नहीं उसकी कहानी
शायद कोई न समझ पाए उसकी यह जिंदगानी
क्या अब किसी ने है जानी कैसी होती उनकी जिंदगानी

संस्थान में आयोजित हिन्दी कार्यशाला एवं अन्य कार्यक्रमों की झलकियाँ

संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह में पुस्तक प्रदर्शनी का मुख्य अतिथि डॉ. विजय कर्ण द्वारा उद्घाटन

संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह में पुस्तक प्रदर्शनी का मुख्य अतिथि डॉ. विजय कर्ण एवं अन्य अतिथि द्वारा अवलोकन

मुख्य अतिथि द्वारा संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह का दीप प्रज्जवलित कर उद्घाटन

संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह में हिन्दी में कार्य करने हेतु शपथ ग्रहण

संस्थान में आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह में महिला कवियत्री द्वारा कविता पाठ

हिन्दी सप्ताह समारोह का समापन करते हुये मुख्य अतिथि डॉ. नीतू कुमारी नवगीत

संस्थान में आयोजित हिन्दी कार्यशाला में मुख्य अतिथि डॉ. सी. एम. नौटियाल का उद्बोधन

संस्थान में आयोजित हिन्दी कार्यशाला में सदस्य सचिव, रा. का. स. द्वारा मुख्य अतिथि को धन्यवाद प्रस्ताव

वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

संस्थान द्वारा हस्तान्तरित एवं व्यवसायीकरण हेतु उपलब्ध प्रौद्योगिकियाँ

- जैव नियंत्रक एवं जैव कीटपीड़क नाशक (*ट्राईकोडर्मा* आधारित)
- जैव उर्वरक (*बैसिलस* आधारित)
- हर्बल गुलाल एवं रंगोली
- हर्बल सिंदूर
- हर्बल बियर
- हर्बल लिपस्टिक
- कफ नियंत्रक हर्बल उत्पाद
- ट्रांसजेनिक बी.टी. कपास तकनीक
- स्वास्थ्य हेतु हर्बल औषधीय पेय
- यूरोलिथिएसिस नियंत्रण हेतु हर्बल फार्मूलेशन
- न्यूट्री जैम–पौष्टिकता से समृद्ध एक हर्बल उत्पाद
- अल्सर नियंत्रक हर्बल उत्पाद
- हर्बल हेयर कलर
- हैंड सेनेटाइजर

एन.बी.आर.आई–सीमैप का संयुक्त प्रयास

- हर्बी च्यू (तम्बाकू एवं रसायन रहित हर्बल मिश्रण)
- नेचुरल टूथपेस्ट
- मधुमेह में लाभकारी हर्बल उत्पाद

सामाजिक उत्थान हेतु प्रौद्योगिकियाँ

- पुष्प निर्जलीकरण तकनीक
- पुष्पों (*ग्लेडिओलस*, ट्यूबरोज, *क्राइसैन्थिमम*) की कृषि प्रौद्योगिकी

विस्तृत जानकारी हेतु सम्पर्क करें :
निदेशक
वै.औ.अ.प.–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ– 226001
दूरभाष : 0522–2205848, 2297801, फैक्स : 0522–2205839
ई मेल : director@nbri.res.in, वेबसाइट : www.nbri.res.in